खंड 4
कार्ल मार्क्स, एमिल दखाईम और मैक्स वेबर : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 धर्म*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 धर्म, अर्थव्यवस्था एवं पूँजीवाद

- 10.2.1 कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण
- 10.2.2 मैक्स वेबर का दृष्टिकोण

10.3 धर्म और सामूहिक प्रतिनिधान

- 10.3.1 एमिल दर्खाइम का दृष्टिकोण
- 10.3.2 टोटमवाद का अध्ययन
- 10.3.3 धर्म और विज्ञान

10.4 मार्क्स और वेबर की तुलना

10.5 वेबर और दर्खाइम की तुलना

10.6 सारांश

10.7 संदर्भ

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए संभव होगा

- धर्म पर कार्ल मार्क्स के विचार को समझना;
- धर्म पर मैक्स वेबर के विचार को समझना;
- धर्म के समाजशास्त्र में एमिल दर्खाइम के योगदान को समझना;
- इन चिंतकों के दृष्टिकोण में अंतर बताना।

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि आपको मालूम है, धर्म का संबंध मनुष्यों की मान्यताओं और अनुष्ठानों की उस प्रणाली से है जो उसके क्रियाकलापों और विचारधाराओं को मार्गदर्शित करती है। धर्म वह माध्यम है जिसके द्वारा लोग एकजुट होते हैं, जिससे उनमें एकता और आत्मीयता की भावना पैदा होती है। कभी कभी एक धार्मिक समूह दूसरे समूह के प्रति विरोध प्रकट करने के उद्देश्य से काम करता है। धर्म वह माध्यम है जिसके द्वारा लोग जीवन की समस्याओं और संकटों के समाधान ढूँढते हैं।

कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर ने धर्म और पूंजीवाद पर गहरा चिंतन किया है। इस इकाई में पहले हम इन चिंतकों का धर्म के अध्ययन में योगदान की चर्चा करेंगे। उसके बाद हम धर्म से संबंधित दर्खाइम के विचारों की समीक्षा करेंगे। अंत में हम मार्क्स, दर्खाइम और वेबर के दृष्टिकोण में अंतर पर प्रकाश डालेंगे।

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृतः *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 16 का नीता माथुर द्वारा लघु संशोधन।

10.2 धर्म, अर्थव्यवस्था एवं पूंजीवाद

सामान्यतः अर्थशास्त्र वस्तुओं के उत्पादन और वितरण से संबद्ध है। मनुष्य उत्पादन और वितरण की प्रक्रियाओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। किन वस्तुओं का उत्पादन और वितरण होगा, यह समाज की खपत विशेषताओं के सामान्य प्रारूप पर निर्भर करता है। स्वाभाविक है कि धार्मिक मान्यताएँ और मूल्य काम धंधे और उपभोग के प्रति भी मानव व्यवहार पर असर डालते हैं।

जिस धर्म में मनुष्य की मुक्ति का मार्ग कठोर परिश्रम माना गया है, उसके अनुयायी निश्चित रूप से समर्पित और ईमानदार श्रमिक होंगे। दूसरी और, यदि किसी धर्म में काम को पापों की सजा कि रूप में देखा गया हो तब तो उसमें समर्पित और ईमानदार श्रमिक मिलने से रहे। इस बात को एक अलग तरह से देखें। यदि किसी धर्म में काम के प्रति ईमानदारी और लगन पर बहुत जोर हो तो अनुयायी कारखानों में श्रमिकों के शोषण को नजरंदाज भी कर सकते हैं।

धार्मिक मान्यताएँ उपभोग को भी प्रभावित करती है। यदि किसी समाज में शंखों का धार्मिक महत्व हो तो उन्हें सुरक्षित/संरक्षित किये जाने की संभावना बढ़ जाती है। इसी तरह यदि मद्यपान निषिद्व हो तो शराब के कारखानों की संख्या कम होने की संभावना होती है। इसलिए यह कहना सही है कि धर्म मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करता है। भारत की अनेक जनजातियों में भूमि हस्तान्तरण और गरीबी की वजह से नये धार्मिक पंथों का उदय हुआ है। नये 'मसीहे' या पैगम्बर इन पंथों के माध्यम से संकट का सामना करने का प्रयास करते हैं।

अभी तक हमने दर्शाया कि धार्मिक मान्यताएँ और मूल्य उत्पादन वितरण और उपभोग को प्रभावित करते हैं। कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर ने धर्म और अर्थव्यवस्था के संबंध पर गहरा चिंतन किया है।

प्रत्येक युग की अपनी विशिष्ट अर्थव्यवस्था होती है। सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्यवाद इसके कई उदाहरण हैं। उत्पादन, वितरण और उपभोग का स्वरूप और संगठन विविध आर्थिक व्यवस्थाओं में एक–दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।

15वीं और 16वीं शताब्दियों में यूरोप में विज्ञान, दर्शन एवं पुनर्जागरण (Renaissance) के प्रभाव से सामंतवाद का पतन हो रहा था। अनेक सामंतवादी देषों में कैथोलिक चर्च की मजबूत जड़े थीं। सामंतवाद के परिवर्तन के साथ–साथ धार्मिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आने लगाा। कैथोलिक चर्च के धर्मसिद्धांतों को नई विचारधाराओं ने चुनौती दी। 'पोप' का आधिपत्य, राष्ट्र के कार्य में चर्च का दखल विशेष रूप से कड़ी आलोचना के विभिन्न यूरोपीय देशों में अनेक प्रोटेस्टेंट पंथों का उदय हुआ। बहुत से विद्वानों ने पूंजीवाद और धर्म के संबंध और विशेषरूप से प्रोटेस्टेंटवाद को समझाने का प्रयास किया। कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर ऐसे दो विद्वान हैं, जिन्होंने इस संबंध पर महत्वूपर्ण प्रकाश डाला।

10.2.1 धर्म पर कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण

मार्क्स ने अपना ध्यान धर्म पर नहीं बल्कि पूँहजीवादी व्यववस्था के अध्ययन पर केन्द्रित किया। पर पूँजीवाद के अध्ययन के दौरान उन्होंने समाज के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण का भी विकास किया जिसके अंतर्गत समाज के लगभग सारे पहलू विशेषतः धर्म और राजनीति शामिल थे। मार्क्स की सामाजिक परिकल्पना का एक ऐसा आर्थिक आधार था जो धर्म, राजनीति और कला आदि से गठित अधिरचना को बाधित करती है।

आप तो जानते ही है कि मार्क्स के अनुसार समाज मानव की चेतना को निर्धारित करता है। अतः जिन समस्याओं के हल के लिए धर्म आवश्यक होता है वे सिर्फ व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि विशिष्ट शोषक सामाजिक परिस्थितियों से पैदा होती हैं। इस प्रकार, मार्क्स के विचार में धर्म समाज में जड़वत है।

मौटे तौर पर मार्क्स के धर्म पूँजीवाद संबंधित विचार तीन मुद्दों से संबंधित हैंः प्रथम, धर्म सिर्फ माया है जो समाज की वास्तविक शोषक परिस्थितियों को छुपाता है, दूसरा धर्म विरोध प्रकट करने का माध्यम है हालाँकि हल्के तौर पर, तीसरा, धर्म का पतन आलोचना से नहीं, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितयों के परिवर्तन से होगा, जिन्होंने धर्म को जन्म दिया है।

धर्म के दो कार्य है; यह शासक वर्ग की राजनीतिक विचारधारा के रूप में काम करता है। धर्म आम जनता के लिए नशीली वस्तुओं के समान हैं। मार्क्स के धर्म संबंधित विचार 19वीं शताब्दी के प्रशियाई राष्ट्र और प्रोटेस्टैंट धर्म के अनुभव से प्रभावित रहे हैं। प्रशियन राष्ट्र (Prussian State) प्रोटेस्टेंट धर्म को प्रोत्साहन और रक्षा प्रदान कर रहा था, जिसकी मार्क्स ने आलोचना की। इसका कारण यह था कि प्रोटेस्टैंट धर्म उस नये वर्ग की विचारधारा के रूप में काम करने लगा जो सामंतवाद के पतन के बाद उभरा।

जैसा कि आप जानते है, वस्तु मनुष्य के श्रम का फल होता है। इसमें श्रम का सामाजिक पहलू वस्तु के रूप में सामने आता है। यहां उत्पादकों और उनके श्रम का संबंध उनके बीच के संबंध के रूप में नहीं बल्कि उनके अपने श्रम की वस्तुओं के बीच के संबंध के रूप में दर्शाया जाता है। इस प्रकार पुण्य वे सामाजिक वस्तुएँ है जिनके गुण इंद्रियों से समझे नहीं जा सकते हैं। तब मनुष्यों के संबंध वस्तुओं के बीच के संबंध बनते हैं। ऐसे में पुण्यों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इसी तरह धर्म जो मनुष्य से अलग किये गये, श्रम का फल है, स्वतंत्र होकर मनुष्य पर हावी होता है। मनुष्यों के सामाजिक संबंध पराये वस्तुओं के संबंधों की तरह लगने लगते हैं। धर्म जीवन के दुखों से मुक्ति पाने का साधन बन जाता है।

10.2.2 धर्म पर मैक्स वेबर का दृष्टिकोण

वेबर अपनी तर्कसंगतिकरण की धारणा का प्रयोग धर्म, विज्ञान, कला, प्रशासन और राजनीति में परिवर्तन को समझने के लिए करते हैं। वेबर मानते हैं कि पूँजीवाद का जन्म आर्थिक क्षेत्र के तर्कसंगतिकरण की उच्चतम कोटि से हुआ।

वेबर मानते है और सिद्ध करते हैं कि विचार विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टैंट पंथों के विचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

i) पूरब और पश्चिम (East and West)

वेबर ने पाया कि पूर्वी देशों की अपेक्षा पश्चिमी देशों में तर्कसंगतिकरण का अधिक विकास हुआ है। जैसे विज्ञान का उदाहरण लें। वेबर कहते हैं कि पश्चिमी सभ्यता में ही विज्ञान विकास के उच्च चरण तक पहुँचा है। यह स्वीकार करते हैं कि भारत, चीन और मिश्र (इजिप्ट) में ज्ञान की महान परंपरा थी, फिर भी प्रयोग की पद्वति के अभाव में वे पिछड़ गए। संगीत, वास्तुशिल्प, न्यायव्यवस्था, छपाई/ मुद्रण, दफ्तरशाही पूँजीवाद जैसे अनेक क्षेत्रों में तर्कसंगीतकरण की मात्रा पश्चिम में अधिक हैं। तर्कसंगत पूँजीवाद जैसे अनेक क्षेत्रों में तर्कसंगतिकरण की मात्रा पश्चिम में अधिक हैं। तर्कसंगत पूँजीवाद

के उदय से सबद्व तीन मुद्दों पर वेबर ध्यान देता हैः प्रथमः ''स्वतंत्र श्रमिकों की तर्कसंगत पूँजीवाद व्यवस्था, दूसरा ''व्यवस्थित बाजार की और केंद्रित तर्कसंगत औद्योगिक व्यवस्था'', तीसरा ''वैज्ञानिक जानकारी का तकनीकी उपयोग'' और लागत प्रभावी अनुमान लगाना, हिसाब किताब रखना, बकाया निकालना और उनका मानना कि ये सब पूँजीवादी व्यवस्था की विशेषताएँ हैं। पूँजीवाद के उदय से पहले जादुई और धार्मिक शक्तियों को अधिक महत्व दिया जाता था। प्रोटेस्टैंट धर्म ने ऐसी आर्थिक मनोवृत्ति को पैदा किया जिससे तमाम पारम्परिक जादुई धार्मिक शक्तियों विश्वासों का पतन हुआ और पूँजीवाद को पनपने का मौका मिला।

ii) कैथेलिक एंव प्रोटेस्टैंट (Catholics and Protestants)

कैथोलिक और प्रोटेस्टैंट अनुयायी अपनी धार्मिक मान्यताओं से अत्यंत्र प्रभावित थे, और इन्हीं के बल अपना पेशा और शिक्षा चुनते थे। ऑकड़ो के जिक्र करते हुए वेबर बताता है कि प्रोटेस्टैंट अनुयायी अपने बच्चों को तकनीकी, औद्योगिक और वाणिज्यिक शैक्षिक संस्थओं में भेजते थे। जबकि कैथोलिक बच्चे मानविकी पढ़ते थे। अधिकतर कुशल कारीगर और प्रशासक प्रोटेस्टैंट ही थे।

iii) पूँजीवादी मनोवृत्ति (Spirit of Capitalism)

प्रोटेस्टैंट धर्म, विशेषतः कैल्विनिजम ने एक ऐसी आर्थिक मनोवृत्ति दी जो पूँजीवाद के पनपने में सहायक रही। ''आर्थिक मनोवषत्ति के मायने हैं कार्य की वे व्यावहारिक प्रेरणाएँ जो धर्म के मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक परिवेश से जुड़ी हुई हैं।'' (वेबर 1952: 267) बैजामिन फ्रैंक्लिन के कुछ उपदेश जैसे ''समय धन है' ''साख धन है'' ''पैसे से पैसा पैदा होता है'' में यदि प्रोस्टेस्टैंट वाद का सार हैं। प्रायः पारम्परिक समाजों में लोग आजीविका के लिये कमाया करते थे। पर प्रोटेस्टैंटवाद में कमाना अपने आप में गुण बन गया, कमाना अपने व्यवसाय में कौशल का प्रमाण बन गया। श्रम भी अपने आप में एक माध्यम बन गया। प्रोटेस्टैंटवाद के आगमन के बाद लोगों ने भरपूर कमाया पर हाथ खोल कर खर्च नहीं किया। उन्होंने कठोर परिश्रम किया पर ऐश नहीं की। पूँजीवाद मनोवृत्ति की जड़े यदि प्रोटेस्टैंटवाद में थी, जिसके अधिकतर अनुयायी निम्न औद्योगिकः मध्यम वर्ग के उभरते हुए लोग थे।

iv) व्यवसाय करने की भावना (Sense of Calling)

व्यवसाय और श्रम के मायने कैथेलिकवाद, लूथरवाद और कैल्विनवाद में भिन्न रहे हैं। कैथोलिक चर्च के लिए व्यवसाय के मायने थे जग को त्यागना और सन्यास लेना, जबकि लूथर के अनुसार जो मूल्य पूंजीवाद के विकास के लिए आवश्यक थे उनकी उत्पत्ति स्वाभाविक नहीं वरन् ऐतिहासिक घटनाओं का परिणाम थी, दोनों मानते थे कि नयी पूंजीवाद से पूर्व की आर्थिक या व्यापारी वर्ग से नहीं आया ..... (अपितु) नया पूंजीवादी वर्ग एक उभरता हुआ वर्ग था .....'' इसके अलवा व्यवसाय की भावना का मतलब था अपनी जिम्मेवारियों को निभाना। कैथोलिकवाद के अनुसार श्रम ''स्वार्थ का फल;; है जबकि लूथरवाद इसे ''बंधु भाव की अभिव्यक्ति'' मानता है। लूथर ने कहा कि श्रम विभाजन के कारण प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के लिये काम करना पड़ता है। लूथर के विचार में व्यवसाय का मतलब यही है हर व्यक्ति जग में अपने स्थान को स्वीकार करें, अतः उसकी आर्थिक मनोवषत्ति विकासवादी नहीं थी। पर कैल्विन द्वारा दी गई ''व्यवसाय'' की अवधारणा और ''पूर्वनियति के नियम ने पूँजीवाद के विकास को बढ़ावा दिया, खासतौर पर हॉलैड, नीदरलैंडस्, स्विटजरलैंड जैसे देशों में।

v) कैल्विनवाद और जग से जुड़ी हुई तपस्या (Clavinism and Worldy asceticism)

कैल्विनवादी विचारधारा से उत्पन्न पूँजीवादी मनोवृत्ति को समझने के लिये पूर्वनियति का नियम समझना अत्यावश्यक हैं। इस नियम के अनुसार ईश्वर ने कुछ लोगों को मोक्ष देता है और कुछ को नरक दण्ड। कैल्विन कहता है कि ईश्वर की मर्जी जानना असंभव है, और मनुष्य को इसे जानना भी नहीं चाहिये। जिन लोगों को ईश्वर ने नही चुना है, वे कभी भी उसकी कृपा नहीं पा सकेंगे, चाहे वे कुछ भी करें। अपनी आस्था सिद्ध करने के लिये मनुष्य को यह मानकर चलना चाहिये कि ईश्वर ने उसे चुना है, और ईश्वर की महिमा के लिए उसे कठोर परिश्रम करना चाहिये। इस प्रकार अपनी आस्था सिद्ध करें।

पूर्वनियति के नियम के कई सामाजिक मनोवैज्ञानिक असर हैं। पहले यह है कि व्यक्ति बिल्कुल अकेला हो जाता है, क्योंकि उसके और ईश्वर के बीच मध्यस्थता कोई नहीं कर सकता है, न पुजारी न पंथ। दूसरा यह कि व्यक्ति को मोक्ष का रास्ता स्वयं ढूँढना पड़ता है, क्योंकि उसके लिए मंत्र, कर्मकांड आदि जादुई रास्ते बंद हैं। ऐसे में हर 'प्यूरिटन'' धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) खुद से यह सवाल पूछता है ''क्या ईश्वर के चुने हुए लोगों में से मैं एक हूँ'' लेकिन इन प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है, अपने कर्मों द्वारा भी इन्सान इस बात को जान नहीं सकता है कि ईश्वर ने उसे चुना है या नहीं।

धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) के पास एक ही मार्ग बचता है, उसे इस बात पर विश्वास करना पड़ता है कि ईश्वर ने उसे चुना है। इस बात पर विश्वास करते हुए उसे सारे सांसारिक सुखों को त्यागकर हर प्रलोभन का सामना आत्मविश्वास के साथ करना पड़ता हैं। आत्मविश्वास के साथ करना पड़ता है। आत्मविश्वास पाने का एक मात्र रास्ता है ईश्वर की महिमा के लिये परिश्रम करना। ऐसा करने से यह स्थापित होता है कि ईश्वर परिश्रमी, आत्मविश्वासी और तपोमय धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) के द्वारा काम कर रहा हैं। मोक्ष की निश्चितता धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) को स्वयं सिद्ध करनी पड़ती है, और जीवन का हर कदम संभल कर उठाना पड़ता है, क्योंकि वह जानता है कि यदि चूक गया तो पश्चाताप और प्रायशित के लिए कोई जगह नहीं है। धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) स्वयं पर नियंत्रण रखता है और कठोर परिश्रम करके अपने उस विश्वास को प्रदर्शित करता है कि वह ईश्वर द्वारा चुने हुए लोगों में से है।

जब धर्मनिष्ठ व्यक्ति (Puritan) श्रम करके खूब सारा पैसा कमाता है और फिर भी ऐय्याशी से दूर रहता है, तब स्वाभाविक रूप से पूँजी इकट्ठी होती हैं। इस प्रकार, प्रोटेस्टैंट पंथों की आर्थिक मनोवृत्ति थी, जिससे पश्चिम यूरोप के देशों में पूँजीवाद के पनपने में सहायता हुई।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

(क) वस्तु और धर्म में क्या समानता है?

.....

.....

.....

.....

(ख) पूर्वनियति के सिद्धांत का सामाजिक प्रभाव क्या है?

.....

.....

.....

.....

10.3 धर्म और सामूहिक प्रतिनिधान

द एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलीजस लाइफ दर्खाइम की महत्वपूर्ण कृति है। इस की प्रमुख स्थापनाओं पर आज भी विद्वानों और विद्यार्थियों के बीच वाद विवाद होते हैं। इससे पहले कि इस कृति के प्रमुख विचारों पर चर्चा करें, आइए एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर नजर डालें। दर्खाइम ने विश्व के विकसित धर्मों के अध्ययन (जैसे कि हिन्दु धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म) की अपेक्षा धर्म के सरलतम रूप पर ही ध्यान क्यों केन्द्रित किया? आइए एक उदाहरण द्वारा इस प्रश्न का उत्तर दें। यदि आपको साइकिल चलाना आता है तो मोटर साईकिल चलाने में आपकों ज्यादा दिक्कत नहीं होगी। इसी तरह यदि आप धर्म के सरल रूप समझें, जो जटिल, सुव्यवस्थित धर्मों को समझने में सहायता मिलेगी। धर्म की सरलतम रूप उन समाजों में पाया जा सकता है जिनकी सामाजिक व्यवस्था उतनी ही सरल हो, यानी आदिम जनजातीय या आदिवासी समाज। दर्खाइम का उद्देश्य ''आदिवासी'' (aborigines) समाज में आदिवासी धर्म के अध्ययन द्वारा जटिल विचार प्रणालियों और मान्यताओं पर प्रकाश डालना था।

अगले उपभागों में इसी प्रयास का विवेचन किया जायेगा। पहले आइए देखें कि दर्खाइम किस प्रकार धर्म की व्याख्या करते हैं।

10.3.1 एमिल दर्खाइम का दृष्टिकोण

दर्खाइम का कहना है कि धर्म की व्याख्या करने से पहले हमें अपनी पूर्वाकल्पनाओं को पूर्वाग्रहों को दूर करना होगा। वह इस मान्यता को नकारता है कि देवताओं और भूत प्रेतों जैसी रहस्यम और अलौकिक बातों मात्र से धर्म संबंधित है। उसके अनुसार धर्म न सिर्फ असाधारण बातों से बल्कि आम जीवन की सामान्य घटनाओं से संबद्व है। सूर्योदय और सूर्यास्त ऋतुओं का चक्र पेड़ पौधों, फसलों का उगना बढ़ना, नये जीवों का जन्म सब धार्मिक विचारों के विषय हैं। धर्मों की व्याख्या करने के लिए विभिन्न धार्मिक प्रणालियों का अध्ययन जरूरी हैं, जिससे उनके समान तत्वों को पहचाना जा सके। दर्खाइम (1912: 38) का कहना है कि ''धर्म की परिभाषा उन समान गुणों के संदर्भ में ही की जा सकती है जो हर धर्म में पाये जाते है।''

दर्खाइम के अनुसार सभी धर्मों में दो मूल तत्व होते है धार्मिक विश्वास और धार्मिक अनुष्ठान। ये विश्वास सामूहिक प्रतिनिधान (collective representations) हैं, और धार्मिक अनुष्ठान समाज द्वारा स्थापित वे क्रियाएँ है जो इन विश्वासों से प्रभावित होती हैं।

दर्खाइम के अध्ययन के अनुसार धार्मिक विश्वास पवित्र और लौकिक इस विभाजन पर आधारित है। पवित्र और लौकिक क्षेत्र एक दूसरे के विपरीत हैं और इस आपसी भेद को धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकांडों द्वारा सावधानी से नियंत्रित किया जाता है। पवित्र

अथवा दिव्य क्षेत्र वह है जिसे उच्च स्तर दिया जाता है और जिसके प्रति सम्मान अथवा भय की भावना पैदा होती है। दिव्य क्षेत्र को लौकिक क्षेत्र से अधिक महत्व और प्रतिष्ठा दी जाती है। उसके अस्तित्व और शक्ति को सामाजिक नियमों द्वारा सुरक्षित किया जाता हैं। दूसरी और लौकिक क्षेत्र के अंतर्गत आम दैनिक जीवन के सामान्य पहलू शामिल हैं। दर्खाइम के अनुसार दिव्य और लौकिक क्षेत्रों को एक दूसरे से अलग रखना आवश्यक माना जाता है, क्योंकि वे एक दूसरे से मूल रूप से भिन्न, विपरीत और विरोधी हैं।

दर्खाइम के अनुसार धार्मिक विश्वास और अनुष्ठानों का एकीकरण धर्म का स्वरूप लेता हैं। विश्वास से उसका तात्पर्य है विभिन्न नियम, नैतिक विचार, शिक्षा और मिथक। ये सब वे सामूहिक प्रतिनिधान हैं जो व्यक्ति के बाहर होते हुए भी उस धार्मिक व्यवस्था से एकीकृत करते हैं। विश्वासों के माध्यम से व्यक्ति दिव्य क्षेत्र और उसके साथ अपना संबंध समझ सकते हैं, जिसके अनुरूप वह अपना जीवन बिता सकते हैं।

विश्वासों पर आधारित धार्मिक अनुष्ठान वे नियम हैं जो दिव्य क्षेत्र से संबंधित व्यक्तिगत व्यवहार का मार्ग दर्शन करते हैं। धार्मिक अनुष्ठान सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। जैसा कि आपने पढ़ा हैं, सामूहिक चेतना का अर्थ है कि समान मूल्य, विश्वास और विचार जो सामाजिक एकात्मता को संभव बनाते हैं (देखिए गिडन्स 1978: 84–89)।

इन पक्षों पर ध्यान देते हुए दर्खाइम ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि पवित्र चीजों के संबंधित विश्वासों और अनुष्ठानों की एकीकृत व्यवस्था को धर्म कहते हैं और इन विश्वासों और अनुष्ठानों को मानने वाले अनुयायी एक नैतिक समूह में एकीकृत होते हैं।

10.3.2 टोटमवाद का अध्ययन

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, दर्खाइम का यह मानना था कि जटिल धर्मों को समझने के लिये पहले सरलतम धर्मों को समझना आवश्यक हैं। उसके अनुसार टोटमवाद धर्म का सबसे सरल रूप हैं। दर्खाइम ने टोटमवाद के अध्ययन के लिए मध्य आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में प्रचलित टोटमवाद को चुना। इन समाजों के बारे में नृशास्त्रीय जानकारियाँ भरपूर मात्रा में उपलब्ध थीं। समाजशास्त्री और नृशास्त्री इनकी सामाजिक व्यवस्था को सरलतम मानते थें।

यह धर्म उन समाजों में पाया जाता है जिनमें सामाजिक व्यवस्था के आधार कुल (clan) हैं। कुल के सदस्य मानते हैं कि वे एक ही पूर्वज के वंशज हैं। यह पूर्वज या तो कोई प्राणी या वनस्पति हो सकता है अथवा कोई वस्तु। प्रतीक के रूप में इस पूर्वज को 'टोटम वस्तु' (totemic object) कहते हैं। इसी वस्तु से कुल अपना नाम और पहचान प्राप्त करता हैं। टोटम नाम मात्र नहीं, बल्कि एक प्रतीक चिन्ह है जो कि अक्सर उस कुल की विभिन्न वस्तुओं पर यहाँ तक कि लोगों के शरीर पर अंकित रहता हैं। इससे लौकिक वस्तुओं को विशेष महत्व मिलता हैं। वे पवित्र बन जाती हैं। टोटम वस्तु के संबंध में अनेक प्रतिबंध होते हैं। उनकी हत्या करना या उसे खाना मना हैं। उसे सम्मान का दर्जा दिया जाता हैं। कुल से संबंधित हर वस्तु टोटम से संबद्व होती है और टोटम का अंग मानी जाती है। खून का रिश्ता न होते हुए भी कुल के सदस्यों का एक ही वंश का माना जाता है, क्योंकि उनका नाम, और चिन्ह एक हैं। परिणामस्वरूप कुल से बाहर विवाह करना (clan exogamy) एक महत्वपूर्ण नियम होता है। इस प्रकार इन सरल समाजों में धर्म और सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से अंतर्संबंधित हैं।

टोटम वस्तु और संबंधित अन्य वस्तुओं को पवित्र क्यों माना जाता हैं? दर्खाइम के अनुसार टोटम प्राणी या वनस्पति को वास्तव में पूजा नहीं जाता है बल्कि एक ऐसी अमूर्त अदृश्य शक्ति की पूजा होती है जो हर भौतिक वस्तु में छिपी रहती हैं। इस शक्ति को अनेक नाम दिये गये हैं, जैसे कि समोआ में ''माना'', (Mana) मेलनीशिया में ''वाकान'' (Wakan) और कुछ उत्तर अमरीकी जनजातियों में ''औरेंडा''(Orend)। टोटम वस्तु उस टोटम सिद्धांत का प्रतीक मात्र है जो कि स्वयं कुल ही हैं। कुल को अपना अस्तित्व प्रदान किया जाता है। टोटम वस्तु द्वारा उसे मूर्त रूप दिया जाता है। दर्खाइम के अनुसार ''ईश्वर'' की परिकल्पना समाज के दैवीकरण से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में ''ईश्वर'' की परिकल्पना द्वारा समाज को नया रूप दिया जाता है। समाज को क्यों पूजा जाता हैं ? दर्खाइम का कहना है कि समाज व्यक्ति की अपेक्षा हर क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व है और उसकी शक्ति के प्रति भय की भावना पैदा होती है। अतः उसकी सत्ता सम्मानीय होती हैं। उदाहरण के लिये जब युद्व में किसी युवा ने राष्ट्रीय ध्वज को ऊँचा रखने के लिए अपनी जान न्यौछावर की तो कहा जाएगा कि उसने ध्वज के लिये नहीं बल्कि अपने राष्ट्र के लिये अपनी जान न्यौछावर की। ध्वज राष्ट्र का चिन्ह मात्र हैं। समाज व्यक्तिगत चेतना द्वारा ही अभिव्यक्त होता है। समाज हमसे त्याग और समर्पण के आग्रह द्वारा हमारे अंदर की पवित्रता की भावना को बढ़ावा देता है। धर्मिक समारोंहों और त्यौहारों के दौरान यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कुल के सारे सदस्य धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं। सामूहिक उत्तेजना और उत्साह की भावना पैदा होती है जिनसे सामाजिक बंधन और अधिक मजबूत बनते है और सामाजिक एकात्मकता को बढ़ावा मिलता हैं।

संक्षेप में कुल के सदस्य अपने समान पूर्वज को पूजते हैं। यह टोटम वस्तु का रूप लेता है, जिससे कुल को अपना नाम और विशिष्ट पहचान मिलती है। लेकिन दर्खाइम का मानना है कि वास्तव में स्वयं कुल की ही पूजा टोटम वस्तु के माध्यम से होती हैं। धर्म का वास्तविक अर्थ है समाज को दिव्य रूप देकर उसकी पूजा करना, क्योंकि उसे व्यक्तियों से अधिक शक्तिशाली माना जाता है व्यक्ति पर समाज भौतिक और नैतिक प्रतिबंध लगाता है। समाज को पूजने से उसके सदस्यों में एकात्मकता और उत्साह की भावना को बढ़ावा मिलता है जिससे वे सामूहिक जीवन और उसकी सामूहिक अभिव्यक्ति में भाग ले सकते हैं।

10.3.3 धर्म और विज्ञान

दर्खाइम के अनुसार धार्मिक विचारधाराओं से ही वैज्ञानिक विचारधारा की उत्पत्ति हुई। धर्म और विज्ञान दोनों प्रकृति, मानव जाति और मानव समाज से संबंधित है। वस्तुओं का वर्गीकरण उनकी व्याख्या और उनके बीच पारस्परिक संबंधो को समझने का प्रयास धर्म और विज्ञान दोनों द्वारा किया जाता है। विज्ञान वास्तव में धार्मिक विचारों का अधिक शुद्व और विकसित रूप हैं। बल और शक्ति जैसी वैज्ञानिक परिकल्पनाएँ मूलतः धार्मिक परिकल्पनाएँ हैं। दर्खाइम का विश्वास है कि ऐसा समय आयेगा जब धार्मिक विचारों का स्थान विज्ञान ले लेगा। वह इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि समाज विज्ञानों में धर्म का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है।

धार्मिक विचार और वैज्ञानिक विचार दोनों सामूहिक प्रतिनिधान है, अतः उनके बीच संघर्ष होना असंभव है। धर्म और विज्ञान दोनों ही सार्वभौमिक सिद्धांत की खोज करने के दो प्रकार से प्रयास हैं। उनका उद्देश्य मानव जाति को व्यक्तिगत स्वभाव की सीमाओं

से बाहर लाकर एक ऐसी जीवन पद्वति को प्रोत्साहित करना है जो एक साथ व्यक्तिवादी और सामूहिक हो। संपूर्ण मानव कहलाने के लिये व्यक्ति को समाज की आवश्यकता है। व्यक्ति और समाज को एक बनाने में धर्म और विज्ञान दोनों सहायक होते हैं। (जोन्स 1986: 149–152 देखें)

हमने देखा कि किस प्रकार दर्खाइम धर्म का अध्ययन सामूहिक एकात्मकता के संदर्भ में करते हैं। सामूहिक एकात्मकता व्यक्तियों में एकता उत्पन्न कर तथा समाज की पूजा करवा कर और अधिक मज़बूत और गहरी बन जाती है।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

i) दर्खाइम के अनुसार समाज को क्यों पूजा जाता है?

.....

.....

.....

.....

ii) दर्खाइम का कहना है कि धर्म और विज्ञान के बीच संघर्ष असंभव है। क्यों?

.....

.....

.....

.....

10.4 मार्क्स और वेबर की तुलना

बर्नहाम (Birnbaum) (1953) मार्क्स और वेबर के विचारों की साम्यता की ओर इशारा करते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे इस प्रकार हैः सबसे पहले, मार्क्स और वेबर दोनों मानते हैं कि पूँजीवाद एक आर्थिक व्यवस्था मात्र न होते हुए पूरे समाज में बसा हुआ हैं, दूसरी बात जिस पर दोनों सहमत हैं वह यह कि पूँजीवाद का उदय ''स्वाभाविक'' न होते हुए ऐतिहासिक विकास का निष्कर्ष हैं, तीसरे दोनों के अनुसार नये पूँजीवादी ठेकेदार वर्ग पूर्व पूँजीवादी वित्तीय या व्यापारी वर्गों से उत्पन्न नहीं हुए। वेबर मार्क्स के विचार से सहमत थे कि पूँजीवादी वर्ग उभरता हुआ वर्ग था।

दोनों में मुख्य अंतर यह है कि मार्क्स विचारों को सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओं के सीधे प्रतिबिंब मात्र मानते थे, जबकि वेबर विचारों को विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानते थे। वेबर ने धर्म और विकास के बीच सीधा संबंध नहीं जोड़ा। वेबर के अनुसार, विकास के एक विशिष्ट चरण के बाद धर्म उन लोगों की विचारधारा के रूप में काम कर सकता है जिन्हें विकास का लाभ प्राप्त हुआ हैं। मार्क्स और वेबर के विचारों में अंतर इस बात पर भी है कि वेबर ये मानते हैं कि धर्म की आलोचना धर्म से जुड़कर भी की जा सकती है, जबकि मार्क्स इस बात को स्वीकार नहीं करते। मार्क्स के अनुसार धर्म की

आलोचना उससे बाहर रहकर ही की जा सकती हैं। उनके विचार में धर्म सामाजिक शोषण को छुपाने वाले यंत्र के रूप में हर युग, हर समाज और हर संस्कृति में सक्रीय रहा है, जबकि वेबर के अनुसार धार्मिक विचारों और विकास का संबंध विशिष्ट ऐतिहासिक सांस्कृतिक संदर्भों पर ही लागू है। वेबर की विचारधारा ''व्यक्ति'' को महत्व देती है, मार्क्स की विचारधारा में यह बात नहीं हैं।

इन विशिष्ट भिन्नताओं के अतिरिक्त मार्क्स और वेबर के धर्म संबंधित विचारों में काफी अंतर है। मार्क्स ने इतिहास को अनेक युगों में विभाजित किया है, जो उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर आधारित हैं। इतिहास में पूँजीवाद भी ऐसा एक युग है। दूसरी और वेबर के लिये पूँजीवाद ''तर्कसंगतिकरण'' के लंबे इतिहास का एक विषय चरण है। वेबर पूँजीवाद को एक आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था मात्र न मानते हुए उसे एक सांस्कृतिक व्यवस्था भी मानता हैं, जिसमें वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जैसे कि प्रशासन, न्याय व्यवस्था, विज्ञान आदि में – तर्कसंगतिकरण को दर्शाता हैं।

10.5 वेबर और दर्खाइम की तुलना

प्रत्येक चिंतक की विचारपद्वति उसे एक दृष्टिकरण प्रदान करती जिससे उसे व्यावहारिक मुद्दों का अध्ययन करने में मदद मिलती है। आपने पढ़ा है कि किस प्रकार दर्खाइम सामाजिक तथ्यों को बाहरी वस्तुओं की तरह देखते है। समाज का स्वतंत्र अस्तित्व (sui-generis) हैं, समाज व्यक्ति के पहले भी था, और व्यक्ति के बाद भी रहेगा। व्यक्ति समाज का अंग बनाने के लिये समाज उस पर कुछ प्रतिबंध लगाते हैं।

दूसरी और वेबर व्यक्ति या कर्त्ता पर ध्यान केन्द्रित करता हैं। कर्त्ता की आचार पद्धति उसके मूल्यों और विश्वासों पर आधारित होती है। वेबर के अनुसार बोध अथवा जर्मन शब्द फर्स्टेहन (verstehen) द्वारा इनका अध्ययन करना समाजशास्त्री का उद्देश्य होना चाहिए। दर्खाइम तथा वेबर की इन विपरीत विचारधाराओं का प्रयास धर्म के अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है।

आइए, दर्खाइम वेबर की विश्लेषण की इकाइयाँ देखें। उन्होंने बहुत ही भिन्न धर्म व्यवस्थाओं को चुना जिनकी सामाजिक पृष्ठभूमि भी बहुत भिन्न हैं।

i) विश्लेषण की इकाइयाँ

दर्खाइम ने धर्म के सरलतम रूप का अध्ययन किया। उन्होंने जनजातिय समाजों का अध्ययन किया है जिनमें सामूहिक जीवन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। समान मान्यताएँ और भावनाएँ ऐसे समाजों को एकात्म करती हैं। इन समाजों का कोई लिखित इतिहास नहीं होता है। धर्म और कुल (clan) व्यवस्था का गहरा संबंध होता है। इस प्रकार दर्खाइम धर्म को एक सामूहिक तथ्य के रूप में देखता हैं जिससे सामाजिक बंधन और अधिक मज़बूत बनते हैं।

दूसरी और वेबर के विश्लेषण की इकाई में विश्व के विकसित धर्म के अध्ययन हैं। उनके ऐतिहासिक आधार और आर्थिक गतिविधियों में उनके योगदान पर उसका ध्यान आकृष्ट होता है। विश्व के इन महान धर्मों को समकालीन सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं के रूप में भी देखा जाता है। उदाहरण के लिय बौद्व धर्म और जैन धर्म में जाति व्यवस्था का विरोध किया गया। यहूदी धर्म शोषित फिलिस्तीनी ग्रामवासियों का धर्म था। प्रोस्टेस्टैंट धर्म कैथोलिक चर्च की विलासिताओं

के प्रति विरोध का प्रतीक था। संक्षेप में दर्खाइम सरलतम धर्मों के अध्ययन द्वारा धर्म को सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में सहायक मानता है। दूसरी ओर वेबर देखता है कि किस प्रकार आचार विचार के नये तरीके विकसित करने में धर्म की रचनात्मक भूमिका होती हैं।

ii) धर्म की भूमिका

यह कहा जा सकता है कि दर्खाइम धर्म को सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं। टोटम की पूजा का वास्तविक अर्थ है, कुल (clan) की पूजा। इस प्रकार कुल द्वारा सम्मानित विचार और विश्वास व्यक्तिगत चेतना के अंग बन जाते हैं। पवित्र और लौकिक क्षेत्रों के बीच मध्यस्थता अनुष्ठानों द्वारा की जाती है। कुछ महत्वपूर्ण अनुष्ठानों में कुल के सारे सदस्य भाग लेते हैं, जिससे सामूहिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति सामाजिक बंधनों में बाँधे जाते हैं, समाज की महानता और शक्ति का उन्हें अहसास दिलाया जाता हैं।

दूसरी ओर, वेबर धर्म को आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते हैं। समाज की अन्य व्यवस्थाओं से उसका पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है ? समाज और धर्म एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते है ?

प्रत्येक समाज की अलग अलग सांस्कृतिक विशेषताओं पर वेबर ध्यान देते हैं। धर्म को वह उस व्यापक ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग मानते हैं, जिसके अंतर्गत पूँजीवाद, औद्योगीकरण और तर्कसंगति का विकास शामिल हैं।

आपने पढ़ा कि किस प्रकार इन चिंतकों के विश्लेषण की इकाइयाँ भिन्न थी। धर्म की भूमिका के संबंध में भी उनके विचार भिन्न भिन्न थे। परिणामस्वरूप दर्खाइम और वेबर द्वारा इस्तेमाल की गई परिकल्पनाओं और अवधारणाओं में भी अंतर है। वेबर बिना झिझक के उन परिकल्पनाओं का प्रयोग करता है जिन्हें दर्खाइम ने हमेशा दूर रखा।

iii) देवता, भूत प्रेत और पैग़म्बर

दर्खाइम इस बात से सहमत नहीं हैं कि देवताओं, भूत प्रेतों जैसी रहस्मय बातों से धर्म संबंधित है। वह मानते हैं कि स्वयं समाज को ही पूजा जाता है, जिसे प्रतीकात्मकम वस्तुओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वेबर देवताओं और भूत प्रेतों के बारे में लिखने से नहीं हिचकते। याद रखें, वे ऐसे धर्मों का अध्ययन करते हैं जिनका विकास जनजातीय धर्मों की तुलना में बहुत देर से हुआ। इन धर्मों में व्यक्तिगत गुणों का समावेश हैं, और उनमें एक प्रकार की अमूर्तता है। अमूर्तता का संबंध प्रतीकात्मकता से होता है। आइए, इस संदर्भ में टोटमवाद का उदाहरण लें। दर्खाइम के अनुसार, टोटम कुल का प्रतीक है। वेबर ऐसे टोटम का उदाहरण देते हैं जिसकी पूजा भी होती है, साथ साथ उसकी आहुति देकर उसे खाया भी जाता है। ऐसी दावत में जनजाति के देवताओं और भूत प्रेतों को भी बुलाया जाता हैं। टोटम प्राणी को खाने से कुल के सदस्यों में एकात्मता की भावना उत्पन्न होती है। वे मानते हैं कि प्राणी की आत्मा उनमें प्रवेश करती हैं। इस प्रकार के टोटम को एक चिन्ह या प्रतीक मात्र नहीं मानते हैं बल्कि उसका सार तत्व आपस में बाँटकर (जो कि न सिर्फ हाड़ माँस अपितु आत्मा भी हैं) कुल के सारे सदस्य एकात्म हो जाते हैं।

दर्खाइम की तुलना में वेबर पैग़म्बरों की भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। यहूदी धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म के इतिहास में अनेक नैतिक पैग़म्बरों का उल्लेख है जिन्हें लोग ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे, और यह मानते थे कि ईश्वर के साथ पैग़म्बरों का सीधा सम्पर्क है। इस संदर्भ में इब्राहीम, मोसिस, ईसा और मुहम्मद जैसे करिश्माई नेतृत्व वाले व्यक्तियों के नाम गिने जा सकते हैं, जिन्होंने लोगों को अत्यधिक आकृष्ट किया।

संक्षेप में, दखाईम इस बात को नकारते हैं कि धर्म मूलतः भूत प्रेतों और देवताओं से संबंधित है। वह मानते हैं कि धर्म के द्वारा स्वयं समाज को ही पूजा जाता है ताकि सामाजिक बंधन और अधिक मज़बूत बनें और व्यक्ति समाज की शक्ति और अमरत्व को अनुभव कर सकें। वेबर धर्म के प्रतीकात्मक पक्ष पर ध्यान देते हैं। भूत प्रेत और देवताओं जैसी अमूर्त कल्पनांए इन्हीं प्रतीकात्मक विचारों के उदाहरण होते हैं। धार्मिक विश्वासों का स्वरूप बदलने और पुननिर्मित करने में करिश्माई व नैतिक पैग़म्बरों के योगदान के संबंध में भी वह चर्चा करते हैं।

आइए, अब धर्म और विज्ञान के अंतसंबध के बारे में दर्खाइम और वेबर के विचारों पर एक नजर डालें।

iv) धर्म और विज्ञान

जैसा कि आपने पढ़ा है, दर्खाइम धर्म और विज्ञान दोनों को सामूहिक प्रतिनिधान मानता हैं। वैज्ञानिक वर्गीकरण मूलतः धर्म से लिया जाता है। इस प्रकार, धर्म और विज्ञान के बीच कोई संघर्ष या भेद नहीं हो सकता। वेबर इससे सहमत नहीं है। विश्व के धर्मों के तुलानात्मक अध्ययन द्वारा उसने स्थापित किया कि किस प्रकार भारतीय और चीनी नेताओं ने पूँजीवाद को पनपने का अवसर नहीं दिया। प्रोटेस्टैंट धर्म ने ही तर्कसंगत पूँजीवाद के पनपने के लिए उपयुक्त विचारधारा प्रदान की। वेबर के अनुसार विज्ञान तर्कसंगति का प्रतीक है जो कि धर्म की रहस्यवादी और परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देता है। विज्ञान मनुष्य को आनुभाविक जानकारी देता है और उसे अपने परिवेश को समझने में और उस पर नियंत्रण करने में सहायता देता है। इस प्रकार, वेबर मानता है कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे से विपरीत हैं।

इन चिंतकों के विचारों की तुलना करना आसान नहीं है जिन समाजों को वे बात कर रहे हैं, वे इतने भिन्न है कि उनके निष्कर्ष में अंतर होना स्वाभाविक ही है। फिर भी कुछ बातें उल्लेखनीय है। दर्खाइम धर्म को वह माध्यम मानते हैं, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की भौतिक और नैतिक शक्ति को स्वीकार करता है। धर्म वस्तुओं और परिकल्पनाओं के वर्गीकरण का एक प्रयास है। विज्ञान का उद्‌गम इसी से होता है।

वेबर धर्म का अध्ययन अनुयाईयों द्वारा दिये गये अर्थों और उनके क्रियाकलापों और अन्य सामाजिक गतिविधियों पर उसके प्रभाव के संदर्भ में करता है, विज्ञान धर्म को चुनौती देता है, और भूत प्रेतों को भगाकर उनकी जगह प्रयोगसिद्ध जानकारी स्थापित करते हैं। धर्म के अध्ययन हेतु विचार दर्शन की दृष्टि से दर्खाइम एंव वेबर में तुलना करते हुए तालिका 10.1 में दिखाया गया है कि इन दोनों विचारकों ने किस प्रकार धर्म को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा।

तालिका 10.1 धर्म पर दृष्टिकोणः दर्खाइम और वेबर

एमिल दर्खाइम	मैक्स वेबर
i) प्राचीन धर्मों का अध्ययन	विश्व के विकसित धर्मों का अध्ययन
ii) धर्म सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है	धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, इतिहास आदि अंतसंबंधित हैं
iii) ''देवता'', ''भूत प्रेत'', पैग़म्बर'' जैसी परिकल्पनाओं की उपेक्षा	इन्ही परिकल्पनाओं का भरपूर इस्तेमाल
iv) धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। अतः इनके बीच संघर्ष नहीं है	धर्म और विज्ञान विपरीत हैं।

10.6 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि कार्ल्स मार्क्स एमिल, दर्खाइम और मैक्स वेबर ने किस प्रकार धर्म को सामाजिक तथ्य मानकर उसका अध्ययन किया। सबसे पहले हमने मार्क्स और वेबर के विचारों पर पूँजीवाद के परिपेक्ष्य में चर्चा की। हमने दर्खाइम के विचारों को समझा। सरलतम धर्म का अध्ययन करने में उसका उद्देश्य, धर्म की व्याख्या, टोटमवाद का अध्ययन, धर्म और विज्ञान के बीच अंतसंबध के पक्षों पर हमने नज़र डाली। अंत में हमने इन चिंतकों के विचारों में निम्नलिखित पक्षों में अंतर देखाः विश्लेषण की इकाइयाँ; धर्म की भूमिका; परिकल्पनाओं और अवधारणाओं में अंतर; धर्म और विज्ञान का अंर्तसंबध।

10.7 संदर्भ

ऐमिल दर्खाइम (1965) *दी एंलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलिजस लाइफ,* न्यूयॉर्कः फ्री प्रेस

जोन्स, रॉबर्ट एलन, 1986. *एमिल दर्खाइमः ऐन इंट्रहोडक्शन टू फोर मेजर वर्क्स,* बेवर्ली हिल्स : सेज पब्लिकेशन इंक

गिड्न्स ऍथोनी (1985) *'कैपिटलिज्म एण्ड मॉडर्न सोशल थियोरी',* केम्ब्रिज : केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO 13), नई दिल्ली : इग्नू

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाज और धर्म* (ESO 15), नई दिल्ली : इग्नू

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) वस्तु और धर्म दोनों मनुष्य के बनाये हुए हैं। परन्तु वे मनुश्य से अधिक महत्वपूर्ण बनकर उसे संयत करते हैं।

(ii) पूर्वनियति के सिद्धांत के सामाजिक परिणाम इस प्रकार हैंः

- व्यक्ति अकेला हो जाता है क्योंकि जादुई उपाय और मध्यस्थता करने वाला कोई नहीं होता हैं।
- काम अपने में लक्ष्य बन जाता है। प्यूरिटन को ईश्वर की महिमा के लिये काम करना पड़ता हैं।
- मोक्ष की निश्चितता को साबित करने के लिये कठोर परिश्रम और आत्म नियंत्रण करना पड़ता है।
- जब प्यूरिटन पैसा कमाकर भी ऐश नहीं करता है तब पूँजी एकत्रित होती है जिसका उत्पादन में पुनः निवेश किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

i) समाज व्यक्ति से पहले था और उसके जाने के बाद भी रहेगा। समाज व्यक्ति से ज्यादा शक्तिशाली और अमर हैं, अतः उसे पूजा जाता है।

ii) दर्खाइम धर्म और विज्ञान दोनों को सामूहिक प्रतिनिधान मानता है। उसके अनुसार, विज्ञान का उद्‌गम धर्म से ही हुआ। व्यक्ति, प्रकृति और समाज को समझने के इन दोनों प्रयासों (विज्ञान और धर्म द्वारा) के बीच संघर्ष असंभव है।

इकाई 11 आर्थिकी*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 श्रम विभाजन

11.2.1 श्रम विभाजन पर दर्खाइम के विचार

11.2.2 श्रम विभाजन पर मार्क्स के विचार

11.2.3 दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों की तुलना

11.3 पूँजीवाद

11.3.1 पूँजीवाद पर कार्ल मार्क्स के विचार

11.3.2 पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर के विचार

11.3.3 मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना

11.4 सारांश

11.5 संदर्भ

11.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप इस बारे में जान पाएंगे

- श्रम विभाजन पर दर्खाइम और मार्क्स के विचारों की तुलना करना;
- पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के विचारों का विवेचन करना;
- पूँजीवाद के विश्लेषण में इन दोनों विद्वानों के विचारों में समानताओं और अंतर को समझना।

11.1 प्रस्तावना

दखाईम तथा मार्क्स के जीवन काल में यूरोप में ''औद्योगिक क्राांति'' चल रही थी। इस पाठ्यक्रम में आपने पहले ही पढ़ा है कि औद्योगिक क्रांति के दौरान उत्पादन की तकनीकों में परिवर्तन हुए। छोटे स्तर पर घरेलू और कुटीर उत्पादन के स्थान पर कारखानों में व्यापक उत्पादन होने लगा।

यह परिवर्तन आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। शहरों और उनकी जनसंख्या में बढ़ोतरी हुई और इसके साथ ही गरीबी, अपराध वृद्वि तथा अन्य समस्याएं सामने आईं। सामाजिक स्थिरता और व्यवस्था पर भी आँच आने लगी। परम्परागत सामंतवादी समाज व्यवस्था डगमगा उठी और आधुनिक औद्योगिक समाज का जन्म हुआ। इस बदलते हुए समाज को समझने के प्रयास दर्खाइम और मार्क्स द्वारा किये गये। हमें यह देखना है कि किस प्रकार श्रम विज्ञाजन की प्रक्रिया के प्रति उन्होंने भिन्न दृष्टिकोण अपनाये। यह प्रक्रिया औद्योगिकरण के कारण दिनों दिन महत्वपूर्ण होती जा रही थी।

*इग्नू की पाठ्यसामग्री : *समाजशास्त्रीय सिद्धांत* (ESO13) की इकाई 20 एवं 21 से नीता माथुर द्वारा अनुकूलित।

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आपकों उस सामाजिक आर्थिक संदर्भ की जानकारी मिल चुकी हैं जिसके अंतगर्त समाजशास्त्र के संस्थापकों ने अध्ययन किया और इस विषय को अपने स्थायी तथा महत्वपूर्ण योगदान से समृद्ध किया। आपने यह भी पढ़ा कि इन विद्वानों ने एक ऐसे दौर में काम किया जिसमें समाज अत्यंत तेज गति से बदल रहा था। तेजी से बदलते विश्व की समस्याओं की छाप इन विद्वानों के अध्ययन और विचारों पर स्पष्ट दिखाई देती है।

इस इकाई में पहले हम ''श्रम विभाजन'' पर एमिल दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों का अध्ययन करेंगे। उसके बाद हम पूंजीवाद पर कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के विचारों का अध्ययन करेंगे।

11.2 श्रम विभाजन

स्काटलैंड के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक *वैल्थ ऑफ़ नेशन्स* (1776) में श्रम विभाजन की अवधारणा का व्यवस्थाबद्ध विश्लेषण किया। स्मिथ का विचार था कि श्रम विभाजन आर्थिक प्रगति का मुख्य स्त्रोत है। यही आर्थिक विकास का वाहन है।

जैसा कि आपने इकाई 4 में पढ़ा, श्रम विभाजन का अर्थ है किसी काम को कई भागों अथवा छोटी प्रक्रियाओं में विभाजित करना। ये छोटी प्रक्रियाएं अलग अलग व्यक्तियों या समूहों द्वारा संपादित की जाती हैं और इस प्रकार काम करने की गति बढ़ जाती है।

11.2.1 श्रम विभाजन पर दर्खाइम के विचार

इकाई 4 में हमने पढ़ा कि समाजशास्त्री के रूप में दर्खाइम का मुख्य विषय सामाजिक व्यवस्था तथा एकीकरण रहा। समाज को एक सूत्र में पिरोए रखने वाली शाक्ति कौन सी हैं? किन बातों के कारण यह एक पूर्ण इकाई बना रहता है? उनके अनुसार औद्योगिक क्रांति से पहले और बाद के समाज में सामाजिक एकता के आधार तथा मूलभूत से अलग अलग रहे हैं। वह यह दिखाते हैं कि किस प्रकार विषमता, भिन्नता तथा जटिलता के ग्रस्त समाज में विशेज्ञता अथवा श्रम विभाजन से एकता का संचार होता है।

दर्खाइम ने समाजों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया।

i) ''यात्रिक एकात्मकता'' पर आधारित समाज

ii) ''सावयवी एकात्मकता'' पर आधारित समाज

(i) यांत्रिक एकात्मकता: जैसा कि आपको मालूम हैं, यांत्रिक एकात्मकता से अभिप्राय है समरूपता अथवा एक जैसा होने की एकात्मकता। ऐसी अनेक समरूपताएं तथा घनिष्ठ सामाजिक रिश्ते होते हैं जो व्यक्ति को उसके समाज से बांधे रहते हैं। सामूहिक चेतना अत्यंत सुदृढ़ होती है। सामूहित चेतना से हमारा अभिप्राय उन समान विश्वासों तथा भावनाओं से है जिनके आधार पर समाज के लोगों के आपसी संबंध परिभाषित होते हैं। सामूहित चेतना की शक्ति इस प्रकार के समाजों को एकजुट रखती है और व्यक्तियों को दृढ़ विश्वासों और मूल्यों के माध्यम से जोड़े रखती है। इन मूल्यों को उपेक्षा या उल्लघंन को बहुत गंभीर माना जाता है। दोषी लोगों को कठोर दण्ड मिलता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि यांत्रिक एकात्मकता पर आधारित समाज में एकरूपता अथवा समरूपता की एकात्मकता है। व्यक्तिगत भिन्नताएं बहुत कम होती हैं तथा श्रम का विभाजन अपेक्षाकृत सरल स्तर का होता हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि इस प्रकार के समाजों में व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना में विलीन हो जाती है।

(ii) सावयवी एकात्मकता: सावयवी एकात्मकता से दर्खाइम का तात्पर्य है भिन्नताओं एंव भिन्नताओं की पूरकता पर आधारित एकात्मकता। एक कारखानें का उदाहरण लें। वहां कामगार तथा प्रबंधन के कार्य, आय, सामाजिक प्रस्थिति आदि में काफी अंतर है। किन्तु साथ ही वे एक दूसरे के पूरक हैं। श्रमिकों के बिना प्रबंधन का होना व्यर्थ है और श्रमिकों को संगठित होने के लिए प्रबंधकों की आवश्यकता है। उनका अस्तित्व ही एक दूसरे पर निर्भर है।

सावयवी एकात्मकता पर आधारित समाज औद्योगिकरण के विकास से प्रभावित और परिवर्तित होते है। इसलिए श्रम विभाजन इस प्रकार के समाजों का उल्लेखनीय पक्ष है। सावयवी एकात्मकता पर आधारित समाज वे समाज होते हैं, जिनमें विषमता, भिन्नता तथा विविधता होती है। विषम समाज में बढ़ती हुई ये जटिलता विभिन्न तरह के व्यक्तित्व में, संबंधों तथा समस्याओं में प्रतिबिंबित होती हैं। ऐसे समाजों में व्यक्तिगत चेतना विशिष्ट हो जाती है और सामूहिक चेतना दुर्बल होने लगती हैं। व्यक्तिवाद का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। यांत्रिक एकात्मकता में सामाजिक प्रतिमान का जो बंधन व्यक्तियों पर रहता है, वह ऐसे समाजों में ढीला पड़ जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा स्वयत्तता का सावयविक एकात्मकता पर आधारित समाज में उतना ही महत्व होता हैं, जितना सामाजिक एकात्मकता का महत्व यांत्रिक एकात्मकता पर आधारित समाजों में होता है।

भौतिक एंव नैतिक सघनता में बढ़ोतरी के परिणामस्वरूप अस्तित्व के लिए संघर्ष पैदा होता है। यांत्रिक एकात्मकता वाले समाज में लोगों में यदि समानता पनपती हैं तो एक जैसे लाभ और स्त्रोत प्राप्त करने के लिए संघर्ष और प्रतियोगिता भी जन्म लेते हैं। जनसंख्या में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों में कमी आने से यह होड़ और तेज़ हो जाएगी। किन्तु श्रम विभाजन के फलस्वरूप व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों और कार्यों के विशेषज्ञ बन जाते हैं। इस प्रकार वे सह अस्तित्व से रहते हैं तथा एक दूसरे के पूरक बनते हैं। किन्तु यह आदर्श स्थिति क्या सदैव बनी रहती हैं ? दर्खाइम का इस सम्बन्ध में क्या मत हैं, इसकी भी समीक्षा कर ली जाए।

श्रम विभाजन के असामान्य रूप

यदि श्रम विभाजन समाज में नई तथा उच्चतर एकात्मकता कायम करने में सहायता देता है तो तत्कालीन यूरोपीय समाज में अव्यवस्था क्यों थी ? क्या श्रम विभाजन से समस्याएं पैदा हो रही थीं ?

दर्खाइम के अनुसार, उस समय श्रम का जो विभाजन हो रहा था, वह सामान्य प्रकार का नहीं था, जिसके बारे में उसने लिखा था। समाज में असामान्य प्रकार का श्रम विभाजन हो रहा था या सामान्य श्रम विभाजन के विपरीत काम हो रहा था। संक्षेप में इनमें निम्नलिखित असामान्य रूप शामिल थे।

i) प्रतिमानहीनता (anomie): इसका अर्थ है एक ऐसी स्थिति जिसमें सामाजिक नियम निरर्थक बन गये हैं। भौतिक जीवन में तेज़ी से बदलाव आता हैं, परन्तु नियम, रीति रिवाज तथा मूल्य उसी गति से नहीं बदलते। ऐसा लगता है कि नियम और प्रतिमान

पूरी तरह टूट गये हैं। कार्यक्षेत्र में यह स्थिति कामगारों तथा प्रबंधकों के बीच टकराव के रूप में प्रकट होती हैं। काम में गिरावट आती हैं, व्यर्थ के काम होते हैं तथा वर्ग संघर्ष में वृद्धि होती हैं।

सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि लोग काम करते हैं और उत्पादन भी करते हैं, किन्तु उन्हें अपने काम की कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती। उदाहरण के लिए कारखानें में असेम्बली लाइन के श्रमिकों को दिनभर कील ठोंकने, पेच करने जैसे सामान्य तथा उकता देने वाले काम करने पड़ते हैं। उन्हें अपने काम की कोई सार्थकता नज़र नहीं आती। उन्हें यह एहसास नहीं कराया जाता कि वे कोई उपयोगी काम कर रहें हैं। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता कि वे समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं। कारखाने के काम से संबंधित नियमों और विधियों में इतना परिवर्तन नहीं किया गया कि श्रमिकों के काम को सार्थक माना जाए और उन्हें यह अनुभूति हो कि समाज में उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है।

ii) असमानता (inequality): दर्खाइम के अनुसार, अवसर की असमानता पर आधारित श्रम विभाजन स्थायी एकता लाने में विफल रहता है। श्रम विभाजन के इस प्रकार के असामान्य रूप से व्यक्तियों में समाज के प्रति कुंठा और नाराज़गी पैदा होती है। इस प्रकार तनाव, कटुता, द्वेष तथा विरोध भाव पनपने लगते हैं। भारतीय जाति व्यवस्था और असमानता पर आधारित श्रम विभाजन का उदाहरण माना जा सकता है। लोगों को अपनी क्षमता नहीं बल्कि जन्म के आधार पर विशेष प्रकार के काम करने पड़तें हैं। यह स्थिति उन लोगों के लिए अत्यंत दुखदायी हैं, जो कुछ अन्य संतोषप्रद तथा लाभप्रद काम करने के इच्छुक हैं, किन्तु उचित अवसरों सें वंचित हैं।

iii) अपर्याप्त संगठन: इस असामान्य रूप में श्रम विभाजन का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। काम सामुचित रूप से संगठित तथा समन्वित नहीं होता। कामगार प्रायः निरर्थक कामों में लगे रहते हैं। कामगारों में एकता का अभाव रहता है। इसलिए एकात्मकता भंग हो जाती हैं और अव्यवस्था फैल जाती हैं। बहुत से दफ्तरों में आपने अनेक कर्मचारियों को खाली बैठे देखा होगा। कई लोगों को तो पता ही नहीं होता कि उनका काम क्या हैं। जब अधिकतर लोगों को अपने कर्त्तव्य की जानकारी तक नह हो तब सामूहिक कार्य कठिन हो जाता है। श्रम विभाजन से उत्पादकता और एकीकरण में वृद्धि होनी चाहिए। जो उदाहरण हमने अभी बताया हैं, उससे विपरीत स्थिति बन जाती है अर्थात् उत्पादकता कम होती हैं तथा एकीकरण का ह्रास होता हैं (देखिए गिडन्स, 1978:21.23)।

इस इकाई में हमने अभी तक यह देखा है कि दर्खाइम श्रम विभाजन को केवल आर्थिक ही नहीं, सामाजिक क्रिया भी मानते हैं। उनके अनुसार इसकी भूमिका आधुनिक औद्योगिक समाज को एकजुट बनाना है। जो भूमिका सामूहिक चेतना यांत्रिक एकात्मकता के मामले में निभाती थी, वही भूमिका श्रम विभाजन सावयविक एकात्मकता के लिए निभाता है। श्रम विभाजन का जन्म बढ़ती हुए भौतिक तथा नैतिक सघनता के कारण उपजी अस्तित्व की होड़ से होता है। विशेषज्ञता ऐसी स्थिति का निर्माण सकती है जिसमें विभिन्न व्यक्ति एक साथ रह सकते हैं और परस्पर सहयोग कर सकते हैं। परन्तु समकालीन यूरोपीय समाज में श्रम विभाजन के भिन्न और नकारात्मक परिणाम सामने आए। सामाजिक व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया।

बोध प्रश्न 1

i) निम्नलिलिखत वाक्यों में खाली स्थान भरिए।

क) औद्योगिक क्रांति के दौरान वस्तुओं के ..... उत्पादन के स्थान पर कारखानों में ..... उत्पादन होने लगा।

ख) औद्योगिक के कारण ..... अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा था।

ग) ..... ने कहा कि श्रम विभाजन आर्थिक विकास का मुख्य स्त्रोत है।

ii) निम्नलिखित वाक्यों के सामने गलत या सही लिखिए।

क) श्रम विभाजन से समय की बरबादी होती है।
गलत / सही

ख) दर्खाइम श्रम विभाजन के आर्थिक पहलू का अध्ययन करना चाहता था।
गलत / सही

ग) श्रम विभाजन से विशेषज्ञता को बढ़ावा मिलता है।
गलत / सही

11.2.2 श्रम विभाजन पर मार्क्स के विचार

सबसे पहले यह समझना होगा कि मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन का अर्थ क्या है। मार्क्स ने अपनी पुस्तक *कैपीटल* के पहले भाग में इस विषय का विवेचन करते हुए श्रम विभाजन के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। ये दो प्रकार हैः सामाजिक श्रम विभाजन और औद्योगिक श्रम विभाजन।

i) सामाजिक श्रम विभाजनः यह सभी समाजों में विद्यमान है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसका होना अनिवार्य है ताकि किसी समाज के सदस्य सामाजिक एंव आर्थिक जीवन को व्यवस्थित बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें। यह समाज में श्रम के सभी उपयोगी रूपों को विभाजित करने की जटिल प्रणाली हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोग किसान हैं जो खाद्य पदार्थ का उत्पादन करते हैं और कुछ हस्तशिल्प की वस्तुएं तो कुछ हथियार एंव अन्य सामान तैयार करते हैं। सामाजिक श्रम विभाजन से विभिन्न समूहों के बीच वस्तुओं के आदान– प्रदान को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिए, कुम्हार द्वारा बनाए गए मिट्टी के बर्तनों के बदले किसान के चावल या बुनकर से कपड़ा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के लेन देन से विशेषज्ञता पनपती हैं।

ii) औद्योगिक श्रम विभाजनः यह प्रक्रिया औद्योगिक समाजों में विद्यमान हैं, जहां पूँजीवाद तथा उत्पादन की फैक्ट्री व्यवस्था प्रचलित है। इस प्रक्रिया में किसी वस्तु के निर्माण को अनेक प्रक्रियाओं में बांट दिया जाता है। प्रत्येक श्रमिक का काम एक छोटी प्रक्रिया (जैसे कि एसेम्बली लाइन का काम) तक सीमित रहता है। यह काम सामान्यताः नीरस तय उकता देने वाला होता है। श्रम के इस विभाजन का उद्देश्य एकदम सरल है।

यह है उत्पादकता बढ़ाना। जितनी अधिक उत्पादकता होगी, उतना ही ज्यादा उससे उत्पन्न अधिशेष मूल्य (surplus value) होगा। यह अधिशेष मूल्य ही पूँजीपतियों को अपनी उत्पादन प्रक्रिया को इस प्रकार नियोजित करने की प्रेरणा देता हैं, जिससे कम से कम लागत पर अधित से अधिक उत्पादन किया जाए। आधुनिक औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन के बल पर ही माल का व्यापक स्तर पर उत्पादन हो रहा है। सामाजिक श्रम विभाजन में स्वतंत्र उत्पादक अपनी वस्तुएं तैयार कर दूसरे स्वतंत्र निर्माताओं के साथ उनका आदान प्रदान करते हैं, किन्तु औद्योगिक श्रम विभाजन भिन्न हैं इसमें कामगार का अपने उत्पाद से कोई सरोकार नहीं रहता।

आइए हम इस मुद्दे पर अधिक विस्तार से अध्ययन करें जिससे औद्योगिक श्रम विभाजन के परिणाम को समझा जा सकता है।

i) लाभ पूँजीपतियों के हिस्से में: जैसा कि पहले बताया गया हैं, औद्योगिक श्रम विभाजन से अतिरिक्त मूल्य के अधिक से अधिक उत्पादन में सहायता मिलती हैं, जिससे पूँजी की मात्रा बढ़ती जाती है। मार्क्स ने अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न किया है कि लाभ किसके हिस्से में जाता हैं ? उसके अनुसार लाभ कामगारों के नहीं बल्कि पूँजीपतियों के हिस्से में जाता है। लाभ पर उनका हक नहीं है, जो वास्तव में उत्पादन करते हैं, बल्कि उनका हक है जिनका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण है। मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन तथा निजी सम्पत्ति की प्रथा, ये दोनों तत्व मिलकर पूँजीपति की ताकत को और मजबूत करते हैं। चूंकि उत्पादन के साधनों का मालिक पूँजीपति है, इसलिए उत्पादन की प्रक्रिया इस ढंग से निर्धारित की जाती है कि उसका अधिकतम लाभ पूँजीपति को ही मिले।

ii) कामगारों का अपने उत्पादन पर नियंत्रण नहीं रहता: मार्क्स के अनुसार, निर्माण में श्रम विभाजन के फलस्वरूप श्रमिक का उत्पादन के वास्तविक निर्माता का दर्जा समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत, वे पूँजीपतियों द्वारा तैयार की गई उत्पादन श्रंखला की एक कड़ी मात्र बन जाते है। श्रमिकों को उनके अपने श्रम से बनाई गई वस्तु से अलग कर दिया जाता है। सच तो यह है कि वे अपने श्रम के अंतिम परिणाम को देख तक नहीं पाते। उसके क्रय विक्रय पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। उदाहरण के लिए भारत में वाशिंग मशीन के कारखाने की असेम्बली लाइन में काम करने वाला मजदूर क्या अंतिम रूप से तैयार वांशिग मशीन को देख पाता है। हाँ हो सकता है किसी विज्ञापन अथवा दुकान में रखी वाशिंग मशीन को वह देख लेता है। वह उस मशीन के निर्माण की प्रक्रिया का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है और न उसे बेचने में उसकी कोई दखल है और न ही वह उसे खरीद पाने में सक्षम हैं। उस पर वास्तविक नियंत्रण पूँजीपतियों का हैं। स्वतंत्र निर्माता या उत्पादक के रूप में श्रमिक का अस्तित्व मिट चुका है। उत्पादन प्रक्रिया ने श्रमिक को गुलाम बना दिया है।

iii) श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण: श्रम विभाजन ये युक्त पूँजीवादी प्रणाली में वस्तुओं के स्वतंत्र उत्पादक के रूप में श्रमिकों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वे उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम शक्ति के पूर्तिकर्ता मात्र रह जाते है। श्रमिक का अलग व्यक्तित्व उसकी जरूरतें तथा इच्छाएँ पूँजीपति के लिए कोई महत्व नहीं रखती। पूँजीपति की चिंता यही रही है कि मज़दूरी या वेतन के बदले उस श्रमिक की श्रम शक्ति मिलती रहे। मार्क्स के अनुसार श्रमिक वर्ग का मानव रूप इस प्रकार विलुप्त हो जाता है और श्रम शक्ति एक वस्तु बन कर रह जाती है जिसे पूँजीपति द्वारा खरीदा जाता है।

iv) अलगाव (alienation): मार्क्स ने औद्योगिक जगत की यथार्थ स्थितियों को समझने की जो अवधारणाएँ विकसित की हैं, उनमें से एक महत्वपूर्ण अवधारणा है अलगाववाद जो उत्पादन तथा श्रम विभाजन की प्रक्रिया श्रमिक को उकता देने वाले काम बार बार करने को विवश करती है। श्रमिक का अपने ही काम पर कोई नियंत्रण नहीं होता। जिस वस्तु का निर्माण होता है, उसकी उत्पादन प्रक्रिया के श्रमिक भाग हैं परंतु उससे तथा अपने सहयोगी श्रमिकों और अंततः पूरे समाज से श्रमिक एक तरह से कट जाते है। (देखें कोलकोवस्की 1978: 281–287)। नियंत्रण रहने, अमानवीय और अलगाव आदि की समस्याओं का क्या कोई समाधान हैं ? मार्क्स का कहना है कि निजी सम्पत्ति की व्यवस्था समाप्त करना और वर्ग विहीन समाज की रचना से ही इन समस्याओं का समाधान होगा।

11.2.3 दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों की तुलना

हमने श्रम विभाजन के बारे में दखाईम तथा मार्क्स के विचारों का अलग–अलग अध्ययन किया है। आइए, अब हम उनके विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करें।

i) श्रम विभाजन के कारण

दखाईम और मार्क्स, दोनों ने सरल पारम्परिक समाज और जटिल औद्योगिक समाज में विद्यमान श्रम विभाजन में स्पष्ट भेद किया है। श्रम विभाजन किसी भी समाज के सामाजिक आर्थिक जीवन का अनिवार्य अंग है। किन्तु उन्होंने औद्योगिक समाजों में होने वाले श्रम विभाजन पर ही अधिक ध्यान दिया है।

दखाईम के अनुसार, औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन भौतिक तथा नैतिक सघनताओं में वृद्धि का परिणाम है। जैसा कि हमने पहले पढ़ा वे विशेषज्ञता अथवा श्रम विभाजन को एक साधन मानते हैं जिसके जरिए स्पर्धा या अस्तित्व के संघर्ष को कम किया जा सकता है। विशेषज्ञता ऐसा है क्योंकि समाज में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट भूमिका रहती है। इससे सामूहिकता और सह अस्तित्व का विकास होता है।

मार्क्स भी उत्पादन में श्रम विभाजन को औद्योगिक समाज की एक विशेषता मानते हैं, परन्तु उनकी मान्यता दर्खाइम की मान्यता से भिन्न है। वे इसे सहयोग एंव सह अस्तित्व का साधन नहीं मानते हैं। इसके विपरीत, उसकी धारणा यह है कि श्रम विभाजन श्रमिकों पर थोपी गई एक प्रक्रिया है ताकि लाभ पूँजीपति के हिस्से में जाए। वे इस प्रक्रिया को निजी सम्पत्ति के अस्तित्व के साथ जोड़ते हैं। इससे उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति का नियंत्रण रहता है। इसीलिए पूँजीपति ऐसी प्रक्रिया तैयार करते हैं जिसमें उनको अधिक से अधिक लाभ मिले। इस प्रकार श्रम विभाजन को श्रमिकों पर थोपा जाता है। मज़दूर वेतन के बदले अपनी श्रम शाक्ति बेचते हैं। उनमें एक जैसे उकता देने वाले तथा एक ही तरह के काम कराए जाते हैं। ताकि उत्पादकता बढ़ने के साथ साथ पूँजीपति के लाभ में भी वृद्धि हो।

संक्षेप में, दर्खाइम की मान्यता है कि श्रम विभाजन के कारण इस तथ्य में निहित हैं कि औद्योगिक समाज को बनाए रखने के लिए व्यक्ति को सहयोग करने तथा विभिन्न प्रकार के काम करने की आवश्यकता है। मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन श्रमिकों पर थोपी गई प्रक्रिया हैं, जिसका उद्देश्य पूँजीपति का लाभ बढ़ाना है। दर्खाइम सहयोग पर बल देते हैं, जबकि मार्क्स ने शोषण एंव संघर्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

ii) श्रम विभाजन के परिणाम

आधुनिक औद्योगिकम समाजों में श्रम विभाजन के कारणों के संबंध में दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण श्रम विभाजन के परिणामों के मामले में भी दर्खाइम और मार्क्स के दृष्टिकोण में अंतर होना स्वाभाविक हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया हैं, दखाईम श्रम विभाजन को ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो लोगों में सहयोग एंव सह अस्तित्व विकसित करने में सहायक हैं। हमने पहले ही पढ़ा है कि किस प्रकार वह श्रम विभाजन को सामाजिक एकीकरण की शक्ति मानते हैं, जिससे एकात्मकता को बढ़ावा मिलता है। ''सामान्य'' स्थिति में श्रम विभाजन से प्रत्येक व्यक्ति का अपनी विशेष भूमिका निभाते हुए सामाजिक एकात्मकता में योगदान होता है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने विशिष्ट क्षेत्र में रचनात्मक और नवोन्मुखता की अपनी शक्ति का विकास हो सकता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति की समाज पर अधिकाधिक निर्भरता होगी हौर परस्पर पूरक कार्य किये जायेंगे। इस प्रकार, सामाजिक बंधन अधिक पक्के तथा स्थायी होते जाते हैं।

दर्खाइम के अनुसार, श्रम का अपर्याप्त संगठन एवं असमानता पर आधारित मानकशून्य विभाजन श्रम विभाजन का व्याधिकीय अथवा असामान्य रूप है। इस प्रकार के रूप वास्तविक श्रम विभाजन के परिणाम नहीं हैं। ये समाज की अस्थिरता के परिणाम है। नए आर्थिक संबंधों के नियम और सिद्वांत अभी व्यवहार में नहीं आए हैं। आर्थिक क्षेत्र में बड़ी तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है, किन्तु इसे सही दिशा देने वाले नए नियम कानून अभी व्यवस्थित रूप में विकसित नहीं हुए हैं।

दूसरी ओर, मार्क्स की दृष्टि में श्रम विभाजन पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों पर थोपी गई एक प्रक्रिया हैं। जैसा कि हमने पहले भी पढ़ा हैं, इसके फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण हो जाता है। अलगाववाद उभर जाता है। श्रमिक व्यक्ति की बजाय वस्तु के रूप में देखे जाते हैं। उनकी सष्जनात्मकता छीन ली जाती है और अपनी ही उत्पादों के नियंत्रण से वे वंचित हो जाते हैं। उनका श्रम सामग्री का रूप ले लेता हैं, जिसे बाज़ार में खरीदा और बेचा जा सकता हैं। इस प्रकार वे स्वयं उत्पादक न रहकर उत्पादन प्रक्रिया का अंग मात्र बन जाते हैं। उनके नियोजकों यानी मालिकों के लिए उनके व्यक्तित्व और उनकी समस्याओं का कोई महत्व नहीं रहता। उन्हें काम करने की मशीन से अधिक कुछ नहीं समझा जाता। इस प्रकार उनका पूर्णतया अमानवीकरण हो जाता है। वे एक ऐसी व्यवस्था के अंग होते हैं जिसके नियंत्रण से वे वंचित हैं, जिसके परिणामस्वरूप सभी स्तरों पर अलगाव महसूस करते हैं, अपने काम से लेकर साथियों और सामाजिक व्यवस्था तक से वे कट जाते हैं।

संक्षेप में, दखाईम की नज़र में श्रम विभाजन ऐसी प्रक्रिया हैं, जो सामाजिक सांमजस्य का आधार बन सकती हैं। मार्क्स के अनुसार, यह एक ऐसी प्रक्रिया हैं, जिससे श्रमिक का अमानवीकरण होता है और अलगाव बढ़ जाता है तथा उत्पादक का अपनी रचना से संबंध टूट जाता है। श्रमिकों को जिस व्यवस्था का स्वामी होना चाहिए उसके ही वे गुलाम बन कर रह जाते हैं।

iii) श्रम विभाजन से संबंधित समस्याओं के समाधान

जैसा कि हमने पढ़ा हैं दर्खाइम श्रम विभाजन को ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो सामान्य परिस्थितियों में सामाजिक सामंज्य का कारण बनती है। समाज में श्रम विभाजन के जो

असामान्य रूप प्रचलित हो जाते हैं, उनको इस प्रकार सुधारा जाना चाहिए जिससे श्रम विभाजन सामाजिक एकीकरण की अपनी भूमिका निभा सके।

दर्खाइम का कहना है कि समाज में श्रमिकों को उनकी भूमिका के प्रति जागरूक बनाकर प्रतिमानहीनता की स्थिति को दूर किया जा सकता हैं। उनमें यह एहसास कराने से कि वे समाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं, निरर्थक कार्य करने की उनकी कुंठा को दूर किया जा सकता है। तब यह निरर्थकता उनकी उत्पादक भूमिका के महत्व के प्रति चेतना का रूप ले लेगी।

मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद ही वास्तव में मूल समस्या हैं। श्रम विभाजन से अमानवीकरण, अलगाव और नियंत्रण के अभावा जैसी स्थितियां जन्म लेती है। इसका समाधान है क्रांति, जिसके माध्यम से उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का फिर से नियंत्रण हो सकेगा। वे तब उत्पादन प्रक्रिया का विकास और संचालन इस ढंग से करेंगे कि अमानवीकरण और अलगाव जैसी समस्याएँ अतीत का विषय बन जाएँगी।

iv) समाज के बारे में दर्खाइम का ''प्रकार्यात्मक'' माँडल और मार्क्स का ''संघर्ष'' मॉडल

श्रम विभाजन के अध्ययन के आधार पर दर्खाइम ने समाज का प्रकार्यात्मक मॉडल विकसित किया। वह इसमें देखते हैं कि किस प्रकार सामाजिक संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं समाज को बनाएं रखने में सहायक होती है। दर्खाइम सामाजिक संतुलन के प्रश्न का स्पष्टीकरण देने का प्रयास करता हैं। हमें याद रखना चाहिए कि दर्खाइम के जीवन काल में समाज की व्यवस्था पर खतरे मंडरा रहे थे। इसलिए संभवतः उनका काम यह दिखाना था कि जो परिवर्तन हो रहे हैं उनसे समाज व्यवस्था छिन्न भिन्न नहीं होगी, बल्कि नए समाज में सामंजस्य लाने में सहायता मिलेगी। दर्खाइम श्रम विभाजन के आर्थिक पहलू मात्र को नहीं बल्कि उसके सामाजिक पहलू अर्थात् सामाजिक एकीकरण में उसके योगदान को भी महत्व देते हैं।

दूसरी ओर औद्योगीकरण की चुनौतियों के प्रति मार्क्स की प्रतिक्रिया एकदम भिन्न हैं। वे दर्खाइम की इस मान्यता से सहमत नहीं है कि समाज मूलतः संतुलित स्थिति में है और सामाजिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का अस्तित्व केवल इसलिए है कि वे समाज को एक बनाए रखने में सहायक हैं। मार्क्स मानव इतिहास को वर्ग संघर्ष अथवा शोषण एंव शोषितों के बीच संघर्षों की श्रृंखला का इतिहास मानते हैं। पूँजीवाद मानव इतिहास का एक चरण हैं, जिसमें बुर्जुआ वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष चल रहा है। पूँजीवाद के अंतर्गत जो उत्पादन प्रणाली विद्यमान हैं, वह श्रमिकों का शोषण करने के लिए तैयार की गई है। श्रमिकों और पूँजीपतियों के हित आपस में टकराते हैं। मार्क्स को विश्वास है कि सर्वहारा की क्रांति से पुरानी व्यवस्था का पतन होगा और नई प्रणाली का सूत्रपात होगा। समाज के प्रति मार्क्स के दृष्टिकोण में विरोध, संघर्ष और परिवर्तन का प्रमुख स्थान है। इस अर्थ में मार्क्स ने समाज का संघर्ष मॉडल प्रस्तुत किया।

संक्षेप में, दर्खाइम की दृष्टि में समाज एक ऐसी व्यवस्था हैं, जो अपनी विभिन्न संस्थाओं के योगदान से एकजुट बनी रहती हैं। मार्क्स इतिहास को ''सम्पन्न'' और ''सर्वहारा'' वर्गों के बीच संघर्षों की श्रृंखला मानते हैं, जिसमें टकराव और परिवर्तन होता है। दोनों विद्वानों के दृष्टिकोण में मुख्य यही अंतर हैं।

11.3 पूँजीवाद

टॉम बॉटोमोर (1973) ने अपनी पुस्तक *डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट* में पूँजीवाद की कुछ प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की है। उत्पादन की प्रणाली के रूप में मार्क्स ने पूँजीवाद की निम्न विशेषताएं स्पष्ट की हैं।

i) उत्पादन निजी इस्तेमाल की बजाय बिक्री के लिए होता हैं: पूँजीवाद गुजारा चलाने भर के साधन जुटाने वाली आर्थिक प्रणाली के विकास की अगली कड़ी हैं। पूर्व पूँजीवादी आर्थिक प्रणालियों में उत्पादन प्रायः सीधे उपभोग के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, कृषि–केन्द्रित आर्थिक प्रणालियों में किसानों ने अपने इस्तेमाल के लिए ही फसलें उगाई हैं। थोड़ा सा हिस्सा ही बिक्री के लिए बच जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि तकनीकी ज्यादा उन्नत नहीं होती थी और घर परिवार के लोग ही सीमित संख्या में काम करते हैं। पूँजीवाद व्यवस्था की स्थिति भिन्न हैं। इसमें बहुत बड़ी संख्या में श्रमिकों को फैक्ट्री में काम करना होता हैं। उन्हें मशीनों की मदद से और श्रम विभाजन द्वारा बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करना होता है। यह उत्पादन बाज़ार में बिक्री के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए साबुन बनाने वाली फैक्ट्री में उत्पादकों के अपने इस्तेमाल के लिए साबुन नहीं बनाया जाता बल्कि यह बाज़ार में बिक्री के लिए बनाया जाता है।

ii) श्रम शक्ति खरीदी और बेची जाती है: मार्क्स का कहना है कि पूँजीवादी प्रणाली में श्रमिक को केवल श्रम शक्ति के रूप में आंका जाता है। पूँजीपति या मालिक उनकी श्रम शक्ति को मज़दूरी देकर खरीदते हैं। श्रमिक अपनी श्रम शक्ति को बेचने या न बेचने को कानूनी तौर से स्वंतत्र है। मानव इतिहास के प्राचीन चरणों की तरह, श्रमिकों से दासों या कृषि दासों की तरह जबरन काम नहीं कराया जाता। उनकी आर्थिक ज़रूरतें ही उन्हें काम करने को विवश करती है। उनके सामने दो ही विकल्प हैं – मज़दूरी करें या भूखे रहें। अतः भले ही श्रमिक पूँजीपति से अनुबंध करने के लिए कानूनी तौर से स्वतंत्र है उनकी दो वक्स की रोज़ी रोटी की समस्या उन्हें अपना श्रम बेचने पर मजबूर करती हैं।

iii) लेन देन मुद्रा में होता है: हमने यह पढ़ा कि उत्पादन बिक्री के लिए होता है और यह बिक्री मुद्रा के जरिए होती है। मुद्रा ही वह सामाजिक संबंध हैं जिससे पूँजीवादी प्रणाली के विभिन्न तत्व एक दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए इस प्रणाली में बैकों तथा वित्तीय संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है।

iv) पूंजीपति का उत्पादन की प्रक्रिया पर नियंत्रण: यह विशेषता भी मुद्रा संबंध से जुड़ी हैं। उत्पादन का मूल्य, श्रमिकों की मज़दूरी, वित्तीय निवेश की रकम आदि सभी फैसले पूँजीपति ही करता है।

v) पूँजीपति का वित्तीय निर्णयों पर नियंत्रण: इसका संबंध उत्पादों का नियंत्रण से है। उत्पादकों को मूल्य निर्धारण, श्रमिकों की मजदूरी, वित्तीय निवेश आदि निर्णय पूँजीपति स्वयं लेता हैं।

vi) प्रतिस्पर्धा: चूंकि उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य बिक्री हैं, अतः पूँजीपतियों के बीच में प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक हैं। किसका उत्पादन बाज़ार में सबसे ज्यादा बिकेगा ? किसे सबसे ज्यादा मुनाफा होगा ? इन सवालों से जो स्थिति पैदा होती हैं उसमें सारे पूँजीपति

दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। इसके परिणाम स्वरूप नये नये अविष्कार और नयी तकनीकी का इस्तेमाल होता है। साथ साथ प्रतिस्पर्धा से एकाधिकार (monopoly) वाली फर्में या समान स्वार्थ के लिए मिल जाने वाले व्यापारी समूह (cartels) ही पनप सकते हैं। ऐसी स्थिति में एक उत्पादक या उत्पादकों का समूह अन्य प्रतियोगियों को पछाड़ कर या जबरन हटा कर बाज़ार पर अपना दबदबा कायम कर लेता है। इससे पूँजी का केंद्रीकरण कुछ गिने चुने लोगों के हाथों में हो जाता हैं, अर्थात् पूँजी कुछ ही लोगों के पास रह जाती हैं।

इस प्रकार मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद ऐसी व्यवस्था है जिसमें शोषण, असमानता और वर्गों का ध्रुवीकरण अपने चरम पर होता हैं। इसका मतलब है कि उत्पादन के साधन के मालिकों (अर्थात् बुर्जुआ वर्ग) और श्रमिकों (अर्थात् सर्वहारा वर्ग) के बीच सामाजिक अंतर बढ़ता है। पूँजीवाद के संबंध में मार्क्स की ''वर्ग संघर्ष'' की धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है।

11.3.1 पूँजीवाद पर कार्ल मार्क्स के विचार

कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक गतिविधि और आर्थिक ढ़ांचा ही सामाजिक जीवन का आधार है। आर्थिक ढांचे में उत्पादन की एक विशिष्ट प्रणाली तथा उत्पादन के संबंध निहित है। उत्पादन की प्रणाली ऐतिहासिक काल खंडों में समान नहीं होती। यह इतिहास के परिवर्तन के साथ साथ बदलती है। मार्क्स और एंजल्स ने विश्व इतिहास को विशिष्ट चरणों में विभाजित किया। इनमें से प्रत्येक चरण का आर्थिक स्वरूप अलग अलग था। इस आर्थिक ढांचे से ही अन्य सामाजिक उपव्यवस्थाओं जैसे राजनैतिक व्यवस्था, धर्म, नैतिक मूल्य और संस्कषति आदि का स्वरूप निर्धारित होता है। इन उप व्यवस्थओं को अधिसंरचना (superstructure) कहा जाता है। मार्क्स और एंजल्स ने इतिहास को निम्न चार चरणों में बांटा हैं। (i) प्रारंभिक साम्यवादी (communal) चरण (ii) दास प्रथा पर आधारित प्राचीन चरण (iii) सामंतवादी चरण (iv) पूँजीवादी चरण। उत्पादन की विशिष्ट प्रणालियों के अनुसार मानव इतिहास के विभिन्न चरणों का अध्ययन मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्वांत का आधार है।

जैसा कि बताया जा चुका हैं, इनमें से हर चरण में उत्पादन की एक खास प्रणाली है। प्रत्येक चरण को इतिहास की एक कड़ी माना जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हर चरण के अपने अंतर्विरोध और तनाव होते है। इन अंतर्विरोधों के एक सीमा से ज्यादा बढ़ जाने पर व्यवस्था ही बिखर जाती हैं और पिछले चरण के गर्भ से नया चरण जन्म लेता है।

(i) पूँजीवाद – मानव इतिहास का एक चरण

मार्क्स के ऐतिहासिक विश्लेषण के अनुसार, पूँजीवादी चरण सामंती व्यवस्था के अंतर्विरोधी का सहज परिणाम है। सामंती व्यवस्था में कषि दासों का ज़मीदारों (lords) द्वारा शोषण होता था। यह सामंती व्यवस्था जब अपने तनावों से बिखर गई तो ज़मीदारों के कब्ज़े से बड़ी संख्या में काश्तकार (tenants) मुक्त हुए। ये लोग निरंतर बढ़ते हुए नगरों में बसे, इससे वस्तुओं के उत्पादन के लिए बड़ी संख्या में श्रमिक उपलब्ध हुए। नयी मशीनों का विकास, फैक्ट्री प्रणाली और बड़े पैमाने पर उत्पादन से नयी आर्थिक प्रणाली पूँजीवाद का जन्म हुआ।

यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि मार्क्स ने पूँजीवाद को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा। मार्क्स ने अपने सिद्वांत में समाज में अलग अलग व्यक्ति को केन्द्र बिंदु नहीं बनाया बल्कि पूरे समाज के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद मानव समाज के विकास का ऐसा चरण है जिसका जन्म उसके पिछलें चरण के अंतर्विरोधों के कारण हुआ। इस चरण में भी अपने अंतर्विरोध हैं, जिनके बारे में आगे चर्चा की जाएगी। पूँजीवाद व्यवस्था में अंतर्निहित अंतर्विरोधों से एक नये चरण के जन्म के लिए योग्य परिस्थितियां बनेंगी। मार्क्स के अनुसार यह आदर्श समाज यानी साम्यवादी (communist) समाज होगा। इस समाज में पिछले चरणों की तरह अंतर्विरोध और तनाव नहीं होगें।

(ii) पूँजीवाद और वर्ग संघर्ष

मार्क्स के अनुसार, मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। मानव इतिहास के हर चरण में समाज दो वर्गों में बंटा रहा है – साधन संपन्न और अभावग्रस्त। इनमें से साधनसंपन्नों का प्रभुत्व रहता है और अभावग्रस्तों का दमन होता है।

पूँजीवाद के बने रहने के मुख्य आधार हैं – निजी संपत्ति, फैक्ट्री प्रणाली के अंतर्गत वस्तुओं का बड़े पैमाने पर मुनाफे के लिए उत्पादन और ऐसा श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम शक्ति बेचने पर मजबूर हैं। इन्हीं पूँजीवादी विशेषताओं से समाज में वर्गों के बीच दूरी बढ़ती रहती है और वर्गों का ध्रुवीकरण होता है। जैसे जैसे पूँजीवाद बढ़ता जाता हैं, वर्गों के बीच अंतर भी बढ़ता जाता है। बुर्जुआ और सर्वहारा वर्गों के हित भी अलग अलग होते जाते हैं। सर्वहारा एक जुट हो जाते हैं क्योंकि वे एक ही जैसी समस्याओं से जूझ रहे होते हैं, जिनका समाधान भी समान होता है। इसी प्रकार सर्वहारा वर्ग समाज हितों के लिए संघर्षरत वर्ग बन जाता है। मार्क्स के अनुसार, सर्वहारा की क्राांति से इतिहास के नये चरण – ''साम्यवाद'' का जन्म होगा। इस व्यवस्था में श्रमिक ही उत्पादन के साधनों के स्वामी होंगे, पूँजीवाद के अंतर्विरोध समाप्त होंगे और एक नयी सामाजिक व्यवस्था स्थापित होगी।

संक्षेप में, कार्ल मार्क्स पूँजीवाद को मानव इतिहास की ऐसी स्थिति मानता है जो पिछली स्थिति के अंतर्विरोधों से पनपी है। पूँजीवाद के भी अपने अंतर्विरोध हैं। इस ऐतिहासिक चरण में वर्ग संघर्ष सबसे तीव्र होता हैं, क्योंकि उत्पादन के साधन कुछ ही हाथों में केन्द्रित होते हैं। श्रमिकों को मात्र श्रम शक्ति के रूप में आंका जाता है जिसे मजदूरी द्वारा खरीदा बेचा जा सकता हैं। इस प्रणाली की असमानताओं से वर्गों का ध्रुवीकरण होता है।

सर्वहारा वर्ग को अहसास होता है कि उसके समान हित और समान समस्याएं है। वह इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है। सर्वहारा अपने हितों के लिए संघर्षरत वर्ग बन जाते हैं। इनकी मुक्ति क्रांति से होगी। सर्वहारा की क्रांति से एक नयी सामाजिक व्यवस्था साम्यवाद का जन्म होगा। जिसमें उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का ही स्वामित्व होगा।

11.3.2 पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर के विचार

पूँजीवाद पर मैक्स वेबर द्वारा किये गए विश्लेषण की इन उपभागों में चर्चा की जाएगी। इस अध्ययन से स्पष्ट होगा कि मैक्स वेबर ने पूँजीवाद का स्वतंत्र और अधिक जटिल विश्लेषण प्रस्तुत किया। वेबर ने एक विशिष्ट प्रकार के पूँजीवाद ''तर्कसंगत पूँजीवाद''

का वर्णन किया। उनके अनुसार ''तर्कसंगत पूँजीवाद'' पाश्चात्य देशों (पश्चिम यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देश) में पूरी तरह विकसित हुआ। तर्कसंगति की अवधारणा और उससे संबंधित प्रक्रिया मूलतः पाश्चात्य है। ''तर्कसंगति'' और तर्कसंगत पूँजीवाद'' के बीच संबंध को समझना जरूरी है। इसलिए सबसे पहले तर्क संगति के बारे में मैक्स वेबर के विचारें की चर्चा की जाएगी।

i) 'तर्कसंगति' के बारे में वेबर के विचार

पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर के विचारों को समझने के लिए उसकी तर्कसंगति की अवधारणा को समझना ज़रूरी हैं। पश्चिमी देशों में तर्कसंगति का विकास पूँजीवाद से जुड़ा रहा है। तर्कसंगति तथा तर्कसंगतिकरण से वेबर का क्या तात्पर्य हैं ? आपने इकाई 7 में पढ़ा था कि तर्कसंगति वैज्ञानिक विशिष्टीकरण का परिणाम हैं जो पाश्चात्य संस्कृति की अनोखी विशेषता है। यह बाहरी दुनिया पर स्वामित्व और नियंत्रण प्राप्त करने से संबंधित है। इसके अंतर्गत मानव जीवन को सुसंगठित करने का प्रयास है जिसमें कार्यकुशलता बेहतर हो और उत्पादकता बढ़े।

संक्षेप में, तर्कसंगत बनाने का तात्पर्य मानवीय गतिविधियों को ऐसे नियमित और निर्धारित तरीके से व्यवस्थिति और समन्वित करना है जिससे परिवेश पर मानवीय नियंत्रण कायम हो सके। घटना क्रम को प्रकृति या किस्मत के भरोसे नहीं छोड़ा जाता। लोगों को अपने आस पास के परिवेश के व्यवस्था की ऐसी समझ हो जाती है कि प्रकृति रहस्मय और अनिश्चित नहीं रह जाती। विज्ञान और तकनीकी, लिखित नियमों और कानूनों के द्वारा मानवीय गतिविधियाँ सुसंबद्व हो जाती है। रोज़मर्रा की जिंदगी से एक उदाहरण लें। किसी कार्यालय में एक पद रिक्त होता है। इस पर भर्ती का एक तरीका यह है कि अपने किसी मित्र या संबंधी को नियुक्त कर दिया जाए। लेकिन वेबर के अनुसार यह तर्कसंगत नहीं होगा। दूसरा तरीका यह है कि पद समाचार पत्रों में विज्ञापित किया जाए, आवेदन करने वालों के लिए प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की जाए, फिर साक्षात्कार परीक्षा हो और सर्वोत्तम परिणाम पाने वाले उम्मीदवार चुन लिया जाए। इस तरीके में कुछ नियमों और आचारों का पालन किया गया है। पहले तरीकें में नियमित प्रक्रिया नहीं थी, जो दूसरे में अपनायी गयी। वेबर के अनुसार यह प्रक्रिया तर्कसंगतिकरण का उदाहरण कहलाती है।

ii) तर्कसंगतिकरण और पाश्चात्य सभ्यता

वेबर के अनुसार, तर्कसंगतिकरण पश्चिमी सभ्यता का सबसे विशिष्ट लक्षण है। तर्कसंगति द्वारा प्रभावित पश्चिमी देशों में ऐसी अनेक विशेषताएँ शामिल हैं जो विश्व के किसी और भाग में एक साथ कभी नहीं पायी गई हैं। ये विशेषताएं निम्न हैं।

a) विज्ञान, यानी पश्चिमी देशों में सुविकसित, प्रमाणित किये जा सकने वाले ज्ञान का भंडार

b) एक तर्कसंगत राज्य, जिसमें विशिष्टीकृत संस्थाएं, लिखित नियम तथा राजनीतिक गतिविधि को नियमित करने के लिए संविधान हो।

c) कलाएं जैसे पाश्चात्य संगीत, जिसमें स्वरलिपि प्रणाली हो, अनेक वाद्यों का क्रमबद्ध इस्तेमाल हो। इस स्तर की नियमितता अन्य संगीत प्रणालियों में नहीं हैं।

d) अर्थव्यवस्थाः तर्कसंगत पूँजीवाद में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अगले उपभागों मे इन सब का विस्तृत विवरण होगा।

तर्कसंगति जीवन के कुछ पक्षों तक ही सीमित नहीं है। यह जीवन के हर क्षेत्र में जुड़ी है। पाश्चात्य समाज का सबसे विशिष्ट लक्षण है (देखें फ्राएंड 1972: 17–24)।

iii) परंपरागत और तर्कसंगत पूँजीवाद

क्या पूँजीवाद मात्र लाभ कमाने वाली प्रणाली हैं ? क्या पूँजीवाद के लक्षण मात्र लालच और धन दौलत की लालसा ही है ? इस रूप में पूँजीवादी प्रणाली दुनिया के अनेक भागों में मौजूद थी। प्राचीन बेबीलोन, भारत, चीन और मध्यकालीन यूरोप के व्यापारियों की शक्तिशाली श्रेणियों वाली प्रणाली भी इस अर्थ में पूँजीवादी प्रणाली ही थी। लेकिन ये तर्कसंगत पूँजीवाद नहीं था।

परंपरागत पूँजीवाद प्रणाली में ज्यादातर परिवार आत्म निर्भर थे और अपनी बुनियादी जरूरत की वस्तुओं का स्वयं उत्पादन कर लेते थे। परपरागत पूँजीवाद में केवल विलासिता की वस्तुओं का व्यापार होता था। बिक्री की वस्तुएं बहुत थोड़ी होती थी और कुछ गिने चुने लोग ही खरीदार होते थे। विदेश में व्यापार करना जोखिम भरा था। मुनाफे के लालच में ये व्यापारी बहुत ज्यादा कीमत पर वस्तुए बेचते थे। व्यापार जुए जैसा था। अच्छा धंधा होने पर भारी लाभ होता था। पर कामयाबी ने मिलने पर नुकसान भी बहुत ज्यादा होता था।

आधुनिक या तर्कसंगत पूँजीवाद विलासिता की कुछ दुर्लभ वस्तुओं के उत्पादन या बिक्री तक सीमित नहीं है। इसमें रोज़मर्रा की जरूरत की तमाम साधारण चीजें खाद्य पदार्थ कपड़े, बर्तन, औज़ार आदि शामिल है। परंपरागत पूँजीवाद के विपरीत, तर्कसंगत पूँजीवाद गतिशील है और इसका दायरा फैलता जा रहा है। नये आविष्कार, उत्पादन के नये तरीकें और नयी नयी वस्तुए निरंतर विकसित की जा रही है। तर्कसंगत पूँजीवाद बड़े पैमाने पर उत्पादन और वितरण पर टिका है। वस्तुओं का लेन देन पूर्व निर्धारित और बार बार दोहराए जाने वाले समान तरीकें से ही होता है। व्यापार अब जुआ नहीं है। आधुनिक पूँजीपति कुछ चुने हुए लोगों को ऊँची कीमत पर चुनी हुई वस्तुएं नहीं बेचते। आधुनिक पूँजीवाद का लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा लोगों को ज्यादा से ज्यादा वस्तुएं उचित दामों पर बेचना हैं।

संक्षेप में, परंपरागत पूँजीवाद कुछ उत्पादकों, कुछ वस्तुओं और कुछ खरीदारों तक सीमित है। उसमें जोखिम बहुत ज्यादा है। व्यापार जुए जैसा है। दूसरी ओर, तर्कसंगत पूँजीवाद में सभी वस्तुओं को बिक्री योग्य बनाने का लक्ष्य रहता है। इसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन और वितरण होता है। व्यापार नियमबद्ध होता है। इस चर्चा में, हमने परंपरागत और तर्कसंगत पूँजीवाद के अंतर को समझा।

iv) तर्कसंगत पूँजीवाद की पूर्व शर्तें: पूँजीवाद किस तरह के सामाजिक आर्थिक परिवेश में पनप सकता है ?

वेबर के अनुसार, आधुनिक पूँजीवाद का बुनियादी सिद्वांत समाज की रोज़मर्रा की ज़रूरतें पूरी करने वाले उत्पादक उद्यम का तर्कसंगत संगठन है। इस इकाई में तर्कसंगत पूँजीवाद के लिए ज़रूरी पूर्व शर्तों और उसके लिए उचित सामाजिक आर्थिक परिवेश की चर्चा की जाएगी।

a) उत्पादन के भौतिक संसाधनों पर निजी स्वामित्व: इन भौतिक संसाधनों में भूमि, मशीनें, कच्चा माल, फैक्ट्री की इमारत आदि शामिल हैं। उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होने से ही निजी उत्पादक व्यापार या उद्यम को संगठित कर सकते हैं और

उत्पादन के साधनों को व्यवस्थित कर वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया शुरू कर सकते हैं।

b) मुक्त बाज़ार: व्यापार पर कोई रोक टोक नहीं होनी चाहिए। राजनैतिक स्थिति आम तौर पर शांतिपूर्ण होनी चाहिए। इससे आर्थिक गतिविधियां बिना किसी बाधा के चल सकेंगी।

c) उत्पादन और वितरण की तर्कसंगत तकनीक: इस में उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों का इस्तेमाल शामिल हैं। साथ ही, इसमें वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में विज्ञान और तकनीकी का प्रयोग भी शामिल है ताकि व्यापक मात्रा में विविध प्रकार की वस्तुएं ज्यादा से ज्यादा कुशलता से तैयार की जा सकें।

d) तर्कसंगत कानून: समाज के सभी लोगों पर लागू होने वाली कानूनी प्रणाली होनी चाहिए। इससे आर्थिक अनुबंध करने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। हर व्यक्ति के कुछ कानूनी दायित्व और अधिकार हो जाते हैं और इन्हें लिखित नियमों के रूप में संहिताबद्व कर लिया जाता है।

e) स्वतंत्र श्रमिक: श्रमिकों को अपनी इच्छानुसार कहीं भी और कभी भी काम करने की कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं, बल्कि स्वेच्छा से किये गये अनुबंध पर आधारित होते हैं। लेकिन मार्क्स की तरह वेबर भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि कानूनन स्वतंत्र होते हुए भी आर्थिक दबाव और भूख उन्हें झुकने पर मजबूर कर देती हैं। उनकी स्वतंत्रता कहने भर की हैं। वास्तव में तो ज़रूरत उन्हें श्रम करने पर विवश करती हैं।

f) अर्थव्यवस्था का वाणिज्यिक स्वरूप: तर्कसंगत पूँजीवाद व्यवस्था में यह पाया जाता हैं कि हर व्यक्ति उद्यम में भाग ले सकता हैं। हर व्यक्ति को स्टॉक, शेयर या बांड खरीदने का अधिकार होता हैं। इस प्रकार उद्यम में जन सामान्य भाग ले सकते हैं।

संक्षेप में तर्कसंगत पूँजीवाद ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा नियंत्रण होता है। तर्कसंगत तकनीकी की मदद से वस्तुओं का व्यापक स्तर पर उत्पादन होता हैं तथा बाज़ार में बिना किसी रोक टोक से व्यापार होता है। श्रमिक नियोजकों से अनुबंध करते हैं क्योंकि वे कानूनी तौर पर स्वंतत्र होते है। सभी लोगों पर समान कानूनी प्रणाली लागू होती हैं इससे व्यापारिक अनुबंध करना आसान हो जाता हैं, इस प्रकार इस प्रणाली के लक्षण अपनी पूर्ववर्ती प्रणालियों से भिन्न हैं।

अब इस बात की चर्चा की जाएगी कि वेबर ने आर्थिक प्रणाली के तर्कसंगत होते चले जाने की कैसे व्याख्या की। तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास को कैसे समझाया। अगले उपभाग में यह बताया जाएगा कि किस तरह वेबर पूँजीवाद को एक जटिल अवधारणा मानते हैं और उसके अनुसार किसी एक कारक के आधार पर अथवा मशीनी या एककारणीय संबंध से इसे नहीं समझा जा सकता। तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के पीछे अनेक कारक हैं। इन सभी कारकों की आपसी क्रिया प्रतिक्रिया से तर्कसंगत पूँजीवाद के लक्षण विकसित होते हैं। आइए अब वेबर द्वारा बताए गए आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कषतिक अथवा धार्मिक कारकों पर नज़र डालें।

v) तर्कसंगत पूँजीवाद के कारक

कुछ विद्यार्थी और विद्वानों के मन में आमतौर से यह धारणा है कि वेबर पूँजीवाद के विश्लेषण में आर्थिक कारकों की अनदेखी करता हैं। यह सही नहीं हैं। सच्चाई यह है

कि वे आर्थिक कारकों पर मार्क्स के बराबर जोर नहीं देते परंतु आर्थिक कारकों के महत्व को नकारता भी नहीं। अब पूँजीवाद के विकास में आर्थिक और राजनैतिक कारकों की भूमिका के बारे में वेबर के विचारों की संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

a) आर्थिक कारकः वेबर ने यूरोप में ''घरेलू कामकाज़'' और व्यापार के बीच धीरे–धीरे आये अंतर का उल्लेख किया है। घरेलू इस्तेमाल के लिए छोटे पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन की जगह फैक्टरियों के बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। घरेलू कामकाज और कारखानों के काम के बीच अंतर बढ़ने लगा। परिवहन और संचार के विकास में अर्थव्यवस्था को तर्कसंगत रूप देने में मदद मिली। समान मुद्रा के चलन तथा बही खाता प्रणाली से आर्थिक लेन देन आसान हो गया।

b) राजनैतिक कारकः आधुनिक पाश्चात्य पूँजीवाद का विकास नौकरशाही पर आधारित तर्क विधिक राज्य के विकास से जुड़ा हैं। इसमें नागरिकता की धारणा महत्वपूर्ण हो जाती हैं। नागरिकों के कुछ वैधानिक अधिकार और कर्तव्य होते हैं। नौकरशाही पर आधारित राज्य में सामंतवादी व्यवस्था टूटती है और इस तरह पूँजीवाद बाज़ार के लिए मुक्त भूमि और श्रम उपलब्ध होते हैं। ऐसी राज्य व्यवस्था विशाल क्षेत्र में शांतिपूर्वक राजनैतिक नियंत्रण बनाये रखने के अनुकूल होती है। फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाए जाने का अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण राजनैतिक वातावरण मिल जाता है। तर्कसंगत नौकरशाही राज्य व्यवस्था में संपूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। इस प्रकार की राज्य व्यवस्था में तर्कसंगत पूँजीवाद पनप सकता है।

हमने पढ़ा कि वेबर किस तरह पूँजीवाद के विकास में आर्थिक तथा राजनैतिक कारकों के योगदान का विवरण देते हैं। हमने यह समझा कि कैसे घरेलू उत्पादन के स्थान पर फैक्ट्री में उत्पादन मुद्रा का व्यापक चलन, संचार के साधनों और तकनीकी सहायता से नयी आर्थिक प्रणाली विकसित होती हैं। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार नौकरशाही पर आधारित राज्य व्यापार में फलने–फूलने के लिए उपयुक्त राजनैतिक वातावरण तथा वैधानिक अधिकार और सुरक्षा प्रदान करता है।

लेकिन वेबर के अनुसार केवल यही व्याख्याएं पर्याप्त नहीं है। उनके अनुसार मानव समुदाय अपनी परिस्थितियों को जिस रूप में समझता हैं, उन्हें जो अर्थ देता हैं, मानवीय व्यवहार उसी का प्रतिबिम्ब है। मानवीय व्यवहार के पीछे एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। इसी से मनुष्यों की गतिविधियां प्रेरित होती है। सबसे प्राचीन पश्चिमी पूँजीपतियों के व्यवहार के पीछे कौन सी नैतिकता थी ? परिवेश के प्रति उनकी धारणा क्या थी और वे इस परिवेश में अपनी भूमिका किस प्रकार से समझते थे ?

वेबर ने आंकड़ों के आधार पर कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किये है। उनके अनुसार उस समय के ज्यादातर व्यापारी विभिन्न पेशों के विशेषज्ञ और नौकरशाह प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी थे। इसके आधार पर वेबर का ध्यान एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ, वह यह कि क्या प्रोटेस्टेंट मान्यताओं का आर्थिक व्यवहार पर कोई असर हैं ?

c) धार्मिक/ सांस्कृतिक कारक – प्रोटेस्टेट नैतिकता का सिद्वांत सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि ''प्रोटेस्टेंट नैतिकता'' और पूँजीवादी प्रवृत्ति (जो कि वेबर द्वारा विकसित आदर्श प्ररूप है) के बीच कोई यांत्रिक संबंध नहीं हैं, न ही प्रोटेस्टेट नैतिकता पूँजीवाद के विकास का एकमात्र कारण है। वेबर के अनुसार प्रोटेस्टेंट नैतिकता तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के विभिन्न स्त्रोतों में से एक है।

कल्विन धर्म प्रोटेस्टेंट पंथों में से एक है। वेबर ने इस पंथ में पूर्व नियति की चर्चा की। पूर्व नियति से तात्पर्य इस विश्वास से है कि कुछ लोगों को ईश्वर ने मुक्ति पाने के लिए चुना है। इसकें परिणामस्वरूप अनुयायियों ने धार्मिक ग्रंथों को महत्व देना बंद कर दिया। धार्मिक अनुष्ठानों और प्रार्थना का भी महत्व कम हो गया। पूर्व नियति के सिद्वांत ने बड़ी व्याकुलता और अकेलेपन की भावना पैदा की। प्रारंभिक प्रोटेस्टेंट मत के अनुयायियों ने अपने पेशेवर क्षेत्र में सफलता के प्रयास किए और ऐसी सफलता को ईश्वर द्वारा अपने ''चयन'' का संकेत माना। **ईश्वरीय ''आहवान'' (calling)** की धारणा के फलस्वरूप अथक परिश्रम तथा समय के सदुपयोग पर जोर दिया गया। लोगों ने अत्यंत अनुशासित और सुसंगठित तरीकें से जीना शुरू किया। इच्छा शाक्ति के सुसबद्व तरीके के इस्तेमाल से निरंतर आत्म नियत्रंण की प्रवृति पनपी जिससे व्यक्तिगत आचार के तर्कसंगत बनाने में मदद मिली। यह प्रवृति व्यापार के तरीकों में भी आयी। मुनाफे का इस्तेमाल विलासिता के लिए नहीं किया गया बल्कि व्यापार को और आगे बढ़ाने के उद्देश्य से मुनाफें का फिर निवेश किया गया। इस तरह, **इहलौकिक आत्मसंयम (this wordly asceticism)** जोकि प्रोटेस्टेंट विचारधारा का महत्वपूर्ण अंग हैं, रोजमर्रा के कामकाज को तर्कसंगत बनाने में सहायक हुआ। यह आत्मसंयम अथवा कड़ा अनुशासन और आत्मनियंत्रण साधु सन्यासियों और पुरोहितों तक सीमित नहीं था। बल्कि यह सामान्य लोगों का भी जीवन मंत्र बन गया जिन्होंने स्वयं को तथा अपने परिवेश को अनुशासित करने का प्रयास किया। परिवेश पर नियंत्रण रखना पूँजीवाद का एक महत्वपूर्ण विचार और लक्षण है। इस तरह प्रोटेस्टेंट नैतिकता और उसके दृष्टिकोण ने तर्कसंगत पूँजीवाद को स्वरूप देने में योगदान दिया।

vi) तर्कसंगत पाश्चात्य समाज का भविष्यः ''लोहे का पिंजरा''

हमने देखा कि वेबर तर्कसंगति को पाश्चात्य सभ्यता को प्रमुख लक्षण माना है। आर्थिक प्रणाली, राजनैतिक प्रणाली, संस्कृति और रोज़मर्रा के कामकाज को तर्कसंगत बनाने के महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। तर्कसंगतिकरण की इस प्रक्रिया के परिणामस्वंरूप विश्व के प्रति विरक्ति की भावना पैदा होती है। चूँकि विज्ञान के जरिए लगभग सभी रहस्य, सारे सवाल सुलझाए जा सकते है। इसलिए मानव जाति का विश्व के प्रति आदरयुक्त भय समाप्त हो जाता है। दैनिक जीवन को तर्कसंगत बनाने से लोग एक घिसे पिटे तय शुदा तरीके से जीने को मज़बूर हो जाते हैं। जीवन मशीनी, पूर्व निर्धारित, नियमबद्व और आकर्षणहीन हो जाता है। इससे मानवीय रचनात्मकता कम हो जाती है और लोगों में नीरस एंव नियमबद्व दिनचर्या को तोड़कर कुछ नया करने का उत्साह कम हो जाता है। मानव जाति अपने ही बनाए कारागार में फंस जाती है। इस ''लोहे के पिंजरे'' से निकलने का कोई रास्ता नहीं बचता। तर्कसंगत पूँजीवाद और इसकी सहयोगी तर्कसंगत नौकरशाही वाली राज्य व्यवस्था जीवन की ऐसी पद्धति को स्थायी रूप देते हैं जिसमें मानवीय रचनात्मकता और साहस समाप्त हो जाते हैं। आस पास के परिवेश का आकर्षण ही समाप्त हो जाता है। इससे मनुष्य मशीन जैसा बन जाता है। बुनियादी तौर से, यह अलगाव पैदा करने वाली प्रणाली है।

हमने पढ़ा कि वेबर ने तर्कसंगत पूँजीवाद जैसी जटिल व्यवस्था के विकास की कैसे विवेचना की। वेबर अपनी व्याख्या को आर्थिक और राजनैतिक कारणों मात्र तक सीमित नहीं रखते। वह इन कारकों की अनदेखी भी नहीं करता पर वह तर्कसंगत पूँजीवाद में निहित मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा (psychological motivations) पर जोर देते हैं। ये अभिप्रेरणाएं परिवेश के बारे में बदलते दृष्टिकोण से पैदा हुई है। मानव जाति ने स्वयं

को प्रकृति के चक्र का असहाय शिकार न मानते हुए अपने मन पर और बाहरी दुनिया पर नियंत्रण पाने की नैतिकता को अपनाया है। इस बदले हुए दृष्टिकोण को बनाने में प्रोटेस्टेंट पंथों जैसे कि कल्विनधर्म के विचार सहायक थे। ईश्वरीय आह्वान और पूर्व नियति की परिकल्पनाओं ने अनुयायियों को दुनिया में फलने फूलने और इस पर नियंत्रण पाने की प्रेरणा दी। इससे एक ऐसी आर्थिक नैतिकता विकसित हुई जिसमें व्यक्तिगत जीवन और व्यापार को तर्कसंगत बनाने पर जोर दिया गया। काम का बोझ केवल जरूरत न मान कर पवित्र कर्तव्य माना गया। ईश्वरीय आह्वान की धारणा के कारण अनुशासित श्रमिकों का दल निर्मित हुआ जिसनें पूँजीवाद के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस तरह वेबर ने अनेक स्तरों पर पूँजीवाद का विश्लेषण किया। उसने बदलती भौतिक और राजनैतिक स्थितियों के साथ साथ बदलते जीवन मूल्यों तथा विचारों के आधार पर यह विश्लेषण किया।

वेबर भविष्य की निराशापूर्ण तस्वीर पेश करते हैं। आर्थिक राजनैतिक ढाँचे में तर्कसंगति से जीवन एक नीरस दिनचर्या में ढल जाता है। मानव जाति के सामने प्रकृति के सभी रहस्य खुल जाते हैं, अतः जीवन को रोमांच तथा आकर्षण समाप्त हो जाता है इस तरह मानव जाति अपने ही बनाये ''लोहे के पिंजरे'' में फंस जाती है।

11.3.3 मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना

हमने पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स वेबर के विचारों का अध्ययन किया। इन दोनों के दषष्टिकोण में आपने अनेक समानताएं और अंतर पाये होगे। आइए इन समानताओं और अंतर का अब संक्षेप में विवेचन करें।

i) दृष्टिकोण में अंतर

मार्क्स अपने विश्लेषण में ''समाज'' को इकाई मानते हैं। इस दृष्टिकोण को हमने ''सामाजिक यथार्थवाद'' का नाम दिया है। इसके अनुरूप मार्क्स पूँजीवादी को समाज का एक ऐतिहासिक चरण मानते हैं।

दूसरी ओर वेबर समाज का अध्ययन उन व्याख्या कर्त्ता के दृष्टिकोण के संदर्भ में करते हैं। व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के आधार पर वह सामाजिक यथार्थ को समझने का प्रयास करते हैं। जैसा कि इस इकाई में बताया गया है वेबर व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं पर ध्यान केन्द्रित कर पूँजीवाद का अध्ययन करते हैं। इसके लिए वे लोगों की विश्वदृष्टि की और उनके कार्यकलापों के साथ जुड़े अर्थ की व्याख्या करते हैं।

ii) पूँजीवाद का उदय

मार्क्स पूँजीवाद के उदय को उत्पादन की बदलती हुई प्रणाली के संदर्भ में देखते हैं। उनके अनुसार, आर्थिक प्रणाली या भौतिक क्षेत्र वह मूलभूत ढांचा अथवा अधोसरंचना (infrastructure) है जिससे संस्कृति, धर्म, राजनीति जैसी उप प्रणाजियों अर्थात् अधिसरंचना (super structure) का स्वरूप निर्धारित होता है। उनके अनुसार, सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन मूलतः आर्थिक परिवर्तन होता है। इस तरह, पूँजीवाद के उदय को उत्पादन के साधनों में बदलाव के आधार पर समझाया गया है। इस बदलाव का कारण है पिछले ऐतिहासिक चरण अर्थात् सामंतवाद का विरोधाभास।

वेबर का विश्लेषण कहीं अधिक जटिल है जैसा कि आपने पढ़ा वे तर्कसंगत पूँजीवाद के उदय में आर्थिक कारणों की अनदेखी नहीं करते। लेकिन वे व्यक्तियों के दृष्टिकोण,

अभिप्रेरणाओं और कार्यों को एवम् उनकी व्याख्या को महत्वपूर्ण मानते हैं। व्यक्तियों के दृष्टिकोण, नैतिक मूल्यों, विश्वासों और भावनाओं से उनके कार्य निर्देशित होते हैं और इन कार्यों में आर्थिक कार्य भी शामिल है। इसलिए तर्कसंगत पूँजीवाद के उदय के कारणों को समझने के लिए वेबर नैतिक मूल्यों की उस प्रणाली पर ध्यान देते हैं, जिसकी वजह से तर्कसंगत पूँजीवाद पनपा। उनकी पुस्तक *द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज़्म* में यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

कुछ लोगों का विचार है कि वेबर के विचार मार्क्स से एकदम विपरीत है। उनका कहना है कि मार्क्स आर्थिक प्रणाली को धर्म से ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि वेबर धर्म को आर्थिक प्रणाली से ज्यादा महत्व देते हैं। मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना का यह सतही और सपाट तरीका है। यह कहना ज्यादा उचित है कि वेबर ने अपने विश्लेषण में नये आयाम और नये दृष्टिकोण शामिल करके मार्क्स के विचारों को पूर्णता दी ताकि पूँजीवाद जैसी जटिल धारणा के विविध पक्षों को ज्यादा गहराई से अध्ययन हो सके।

iii) पूँजीवाद के परिणाम और पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने का उपाय

कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिकों के शोषण, अमानवीय और समाज के अलगाव की प्रतीक है। यह असमानता पर आधारित है और इसका बिखर कर नष्ट हो जाना तय है। इस व्यवस्था का पतन इसके अपने ही अंतर्विरोधों से होगा। सर्वहारा वर्ग क्रांति करेगा और मानवीय इतिहास का नया चरण यानी साम्यवाद का उदय होगा।

वेबर भी मानते हैं कि तर्कसंगत पूँजीवाद मूलतः मानवीय समाज से अलगाव पैदा करता है। तर्कसंगत पूँजीवाद और नौकरशाही तर्कसंगत राज्य प्रणाली साथ साथ चलते हैं। इससे मानवीय जीवन एक ढर्रे पर आ जाता हैं, लोग समाज और विश्व से विरक्त हो जाते है। लेकिन भविष्य के प्रति वेबर का दषष्टिकोण निराशावादी है। मार्क्स के विपरीत वे मानते हैं कि क्रांति होने की या व्यवस्था के नष्ट हो जाने की कोई संभावना नहीं है। उनके अनुसार पूँजीवाद की मूलभूत धारणा तर्कसंगति आज की दुनिया की तमाम मानवीय गतिविधियों के लिए बहुत जरूरी है। विज्ञान और तकनीकी की प्रगति, प्रकषति की शक्तियाँ तथा विश्व पर नियंत्रण करने की मानवीय इच्छा ऐसी प्रक्रियाएं हैं, जिन्हें पीछे नहीं लौटाया जा सकता। इसलिए क्रांतियों और विद्रोहों से समाज की प्रगति की दिशा में मूलभूत परिवर्तन नहीं लाया जा सकता।

मार्क्स पूँजीवाद की तर्कहीनता और विरोधों पर अधिक ध्यान देते हैं। उनके अनुसार तर्कहीनता और विरोधों के कारण परिवर्तन आता है। वेबर तर्कसंगति को अधिक महत्व देते हैं। यही तर्कसंगति लोगों को ''लोहे के पिंजरे'' में कैद कर देती है।

इस तरह, पूँजीवाद के बारे में मार्क्स और वेबर के दृष्टिकोणों में अंतर है। मार्क्स समाज के ऐतिहासिक चरणों के आधार पर पूँजीवाद का अध्ययन करते हैं। पूँजीवाद पिछले चरण के अंतर्विरोधों का परिणाम है और इसके साथ ही उत्पादन की नयी प्रणाली जन्म लेती है।

वेबर भी आर्थिक कारकों पर जोर देते हैं। लेकिन पूँजीवाद की उसकी व्याख्या ज्यादा जटिल है। अपनी समाजशास्त्रीय पद्धति अर्थात् अंतदृष्टि के अनुरूप वह व्यक्तिपरक अर्थों, मूल्यों और मान्यताओं पर जोर देते हैं। दोनों ही विचारक मानते है कि मानवीय समाज के लिए पूँजीवाद का प्रभाव हानिप्रद है परंतु भविष्य के प्रति दोनो के दृष्टिकोण में बहुत अंतर है। मार्क्स क्रांति तथा परिवर्तन का संदेश देते हैं पर वेबर ऐसी कोई

उम्मीद नहीं रखते। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का आधार तर्कहीनता है। वेबर के राय में, पूँजीवाद तर्कसंगति का ही परिणाम है। यही दोनों के विचारों में अंतर का मुख्य मुद्दा है।

बोध प्रश्न 2

i) निम्नलिखित वाक्यों के खाली स्थानों में उचित शब्द लिखिए।

क) मार्क्स ..... को अपने विश्लेषण की इकाई मानते हैं इस दृष्टिकोण को ..... कहते हैं।

ख) वेबर सामाजिक स्थिति को ..... के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं।

ग) वेबर के अनुसार पूँजीवाद के मूल में तर्कसंगति निहित हैं, पर मार्क्स की राय में इसका आधार ..... तथा ..... है।

घ) मार्क्स की राय में आर्थिक प्रणाली वह आधार अथवा ..... हैं, जिससे ..... का स्वरूप निर्धारित होता है।

ii) संक्षेप में मार्क्स और वेबर ने पूँजीवाद के उदय के जो कारण बताए, उनकी तुलना करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 सारांश

इस इकाई में हमने श्रम विभाजन पर एमिल दर्खाइम के विचारों का अध्ययन किया। उसने ये विचार अपनी पुस्तक *डिवीज़न ऑफ लेबर इन सोसाइटी* में व्यक्त किए।

इसके पश्चात् श्रम विभाजन पर कार्ल मार्क्स के विचारों की व्याख्या की गई। हमने सामाजिक श्रम विभाजन और औद्योगिक श्रम विभाजन के बीच मार्क्स द्वारा बताए गए अंतर को समझा।

इसके उपरान्त हमने इन समस्याओं के लिए मार्क्स के समाधान अर्थात क्रांति के बारे में पढ़ा जिससे साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना होगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सष्जनात्मक क्षमता का विकास करने का अवसर मिलेगा।

इस इकाई में हमने पूँजीवाद के संदर्भ में मार्क्स और वेबर के दृष्टिकोण के बारे में पढ़ा। इन दोनों विचारकों के जीवन काल में पूँजीवादी व्यवस्था विकसित हुई।

पहले भाग में हमने मार्क्स के प्रमुख विचारों पर चर्चा की। हमने पढ़ा कि कैसे मार्क्स ने पूँजीवाद को मानवीय इतिहास के एक चरण के रूप में देखा। हमने टॉम बॉटोमार द्वारा बताए गए पूँजीवाद के लक्षणों का विवरण किया। हमने मार्क्स के वर्गों के ध्रुवीकरण के विचार का भी अध्ययन किया जिसके परिणाम स्वरूप सर्वहारा क्रांति होगी और पूँजीवाद का विनाश होगा।

11.5 संदर्भ

बॉटोमौर, टॉम (सपा) (1983). *डिक्शनरी ऑफ मार्क्ससिस्ट थॉट.* ब्लैकवैलः ऑक्सफोर्ड

गिड्डनस, एन्थनी (1978). *दर्खाइम.* हार्वेस्टर प्रेसः हैसॉक्स

बॉटोमार टॉम (संपादित) (1973). *डिकशनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट.* ब्लैकवेलः ऑक्सफोर्ड

फ्रांएड, जूलिएन (1972). *सोशियोलॉजी ऑफ मैक्स वेबर.* लंदन : पेंगुइन

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजषास्त्रीय सिद्धान्त,* नई दिल्ली : इग्नू

11.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) लघु, व्यापक

ख) श्रम विभाजन

ग) एडम स्मिथ

ii) क) ग़लत

ख) ग़लत

ग) सही

बोध प्रश्न 2

i) क) गलत

ख) गलत

ग) गलत

घ) गलत

iii) क) यांत्रिक एकात्मकता समरूपता पर आधारित है। सावयविक एकात्मकता भिन्नताओं तथा भिन्नताओं की पूरकता पर आधारित है। इस प्रकार, व्यक्ति नवोन्मुखी भी हो सकते हैं और साथ ही दूसरे व्यक्तियों तथा समाज पर निर्भर भी। इस तरह,

व्यक्तिवाद और सामाजिक सांमजस्य एक साथ रह सकते हैं। अतः दर्खाइम ने सावयविक एकात्मकता को उच्च स्तर की एकात्मकता माना है।

ख) भौतिक तथा नैतिक सघनता समाज के लोगों को एक दूसरे के निकट संपर्क में लाती है। अस्तित्व के लिए और कम मात्रा में उपलब्ध साधनों के लिए संघर्ष छिड़ सकता है। सह–अस्तित्व के लिए व्यक्ति अलग अलग क्षेत्रों में विशेषज्ञता हासिल करते हैं और इस प्रकार श्रम का विभाजन होता है। इस प्रकार, दर्खाइम के अनुसार भौतिक और नैतिक संघनता के फलस्वरूप श्रम का विभाजन होता है।

ग) दर्खाइम के अनुसार, प्रतिमानहीनता (anomie) असामान्य रूप है। यह वह स्थिति हैं, जिसमें लगता हैं कि सभी नियम कानून टूट चुकें हैं। उदाहरण के लिए व्यक्तियों को काम करना पड़ता है और उत्पादन जारी रखना होता है, परन्तु कोई नए नियम लागू नहीं किए जाते। उन्हें समझ नहीं आता कि उनके काम का क्या अर्थ अथवा उद्देश्य हैं।

बोध प्रश्न 3

i) क) समाज, सामाजिक यर्थाथवाद

ख) व्यक्तिपरक अर्थ

ग) तर्कहीनता, अंतर्विरोध

घ) अधोसंरचना, अधिसरंचना

ii) कार्ल मार्क्स पूँजीवाद के उदय की व्याख्या उत्पादन की बदलती प्रणाली के संदर्भ में करते हैं। पिछली प्रणाली, अर्थात् सामंतवाद के अंतर्विरोधों से नयी आर्थिक प्रणाली, अर्थात् पूँजीवाद का उदय होता है। इस प्रकार मार्क्स की व्याख्या मूलतः आर्थिक आधार पर थी। वेबर ने आर्थिक कारकों की अनदेखी तो नहीं की, पर साथ ही उसने राजनैतिक और धार्मिक कारकों की भी चर्चा की। उनकी राय में पूँजीवाद के विकास को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण को भी जानना जरूरी है। इस तरह वेबर का विश्लेषण बहु स्तरीय तथा ज्यादा जटिल है।

इकाई 12 समाज, धर्म और एकात्मकता*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 समाज़

12.3 वर्ग

12.4 श्रम–विभाजन और एकात्मकता

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के आप

- समाज की मार्क्सवादी धारणा स्पष्ट करने के योग्य बन सकेंगे,
- दर्खाइम की एकात्मकता संबंधी धारणा पर चर्चा कर सकेंगे और सामाजिक व्यवस्था के रखरखाव में इसके योगदान को साफतौर पर स्पष्ट कर सकेंगे;
- वेबर द्वारा प्रतिपादित वर्ग एवं तर्कसंगतता की संकल्पना को संक्षेप में प्रस्तुत करने के योग्य बन सकेंगे; और
- समाज, वर्ग एवं एकात्मकता विषयक मार्क्स, दर्खाइम एवं वेबर के दृष्टिकोणों की तुलना कर उनमें अंतर दर्शाने के योग्य बन सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हमने मार्क्स, दर्खाइम और वेबर पर अन्य प्रमुख विचारकों के प्रभाव तथा उनके विवेचनात्मक विचारों का अध्ययन किया था।

साथ ही, हमने इस बात को भी समझा था कि उनके जीवन–यापन एवं उनके काम करने की वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति, उनके द्वारा चर्चित विविध मुद्दों में कैसे साफतौर पर झलकती है। इस इकाई में हम उन समानताओं एवं विभिन्नताओं को देखने/समझने का प्रयास करेंगे जिनके मद्देनजर इन विचारकों ने समाज, वर्ग और एकात्मकता पर चर्चा की और इन संकल्पनाओं पर अपने दृष्टिकोण कायम किए।

12.2 समाज

मार्क्स एवं वेबर दोनों समाज को एक समेकित संरचना के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार, सामाजिक समूह, सामाजिक संस्थाएँ, मानदण्ड, मान्यताएँ, मूल्य एवं सिद्धांत अंतःसंबद्ध होते हैं। दोनों विचारकों ने ही आम लोगों को सामाजिक सामूहिकता अर्थात्

*हरिबाबू, ई0 (सेवा निवृत्त) समाजशास्त्र विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय द्वारा रचित

समाज के एक प्रमुख हिस्से के रूप में देखा। यहाँ आपको पूँजीपतियों एवं कामगार वर्ग के बीच के संघर्ष को ध्यान में रखना होगा, जिसके विषय में हमने इकाई 3 में अध्ययन किया था। यह जानना आपके लिए रोचक होगा कि आपसी विरोध के बावजूद पूँजीपति और कामगार वर्ग एक–दूसरे से जुड़े रहे हैं और वे ऐसे दो समूहों के रूप में अलग–थलग दिखाई नहीं दिए जिनका आपस में मानो कोई सरोकार ही न हो। मार्क्स के अनुसार, सामाजिक संगठन किसी ऐतिहासिक काल विशेष में व्याप्त उत्पादन एवं विनिमय की उपज है। ऐसे सामाजिक संगठन में अर्थव्यवस्था इसके आधार का गठन करती है जबकि विधिक, शैक्षिक, राजनीतिक व अन्य संस्थाएँ इसकी अधिसंरचना का निर्माण करती हैं।

जैसा कि हमने इकाई 1 में अध्ययन किया था, मार्क्स के अनुसार, जीवन की भौतिक जरूरतें ही लोगों को इन्हें पूरा करने की दृष्टि से इनका उत्पादन करने के लिए, उत्पन्न इन्हें बाध्य करती है। जब व्यक्ति उत्पादन प्रक्रिया में संलग्न होते हैं तो वे निश्चित सामाजिक संबंध बनाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यही मार्क्स के समाज संबंधी सिद्धांत की मूल धारणा है। मार्क्स का निश्चित तौर पर मानना है कि भौतिक दशाओं में परिवर्तन से अनिवार्यतः सामाजिक संबंधों में भी बदलाव आता है। इकाई 1 में आपने परिवर्तन के गतिविज्ञान का अध्ययन किया था। आइए, बॉक्स 12.1 पर दृष्टि डालकर समझें कि उस स्थिति में कैसे और क्या होता है जब समाज की उत्पादन शक्तियों के नए घटनाक्रम और उत्पादन के विद्यमान संबंधों के बीच संघर्ष होने लगता है।

बॉक्स 12.1 उत्पादन शक्तियों के नए घटनाक्रम और उत्पादन के विद्यमान संबंधों के बीच संघर्ष

''मार्क्स के अनुसार, समाज की उत्पादक शक्तियों के नए घटनाक्रम उत्पादन के विद्यमान संबंधों से टकराते हैं। जब लोग इस संघर्ष की स्थिति के प्रति जागरूक हो जाते हैं तो वे इसे समाप्त करना चाहते हैं। इतिहास के इस काल को मार्क्स ने सामाजिक क्रांति का काल कहा है। क्रांति के कारण संघर्ष का समाधान हो जाता हैं अर्थात् उत्पादन की नई शक्तियाँ जड़ें जमा लेती हैं और नए उत्पादन संबंधों को जन्म देती हैं। अतः आप देख सकते हैं कि नई उत्पादक शक्तियों का विकास ही मानव इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। उत्पादन शक्तियाँ ही वे शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग समाज जीवन की भौतिक आवश्यकताओं और दशाओं के उत्पादन में करता है। मार्क्स के अनुसार, मानव इतिहास भौतिक उत्पादन की नई शक्तियों के विकास परिणामों का एक लेखा–जोखा है। और यही कारण है कि इतिहास के बारे में मार्क्स के इस दृष्टिकोण को ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा गया।'' (ईएसओ–13, खण्ड 2:18–19 से अनुकूलित)

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि समाज एवं सामाजिक व्यवस्था संबंधी मार्क्स की संकल्पना उत्पादन की प्रमुख रीतियों पर ध्यान केंद्रित करती है। वास्तव में, उत्पादन की प्रमुख रीतियाँ उत्पादनों के सामाजिक संबंधों (अर्थात वर्ग संबंधों) से निर्धारित होती हैं। वर्ग संबंध अपनी प्रकृति में शोषणकारी होते हैं और असमानता एवं संघर्ष से ही अभिलक्षित होते हैं। समाज के अध्ययन में मार्क्स का दृष्टिकोण व्यक्ति–विशेष पर नहीं बल्कि असमानता एवं वर्ग–संघर्ष पर टिका है और ये ही सामाजिक तनावों और समाज में अस्थिरता के मूल कारण हैं।

मार्क्स की भाँति, दर्खाइम भी व्यक्ति–विशेष की बजाय समाज पर अधिक ज़ोर देते हैं। हाँलाकि, दोनों में एक बड़ा अंतर है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण में, श्रमिकवर्ग का शोषण और वर्ग–संघर्ष समाज की प्रकृति का मूल भाग है। दर्खाइम, की नजरों में, हालांकि समाज एक ऐसी पहचान है जो किसी व्यक्ति–विशेष की पहचान से अलग हैं। इकाई 4 में आपने 'सामूहिक चेतना' का अध्ययन किया था। आपको ज्ञात होगा कि सामूहिक चेतना व्यक्ति–विशेषों की आपसी अंतर्क्रियाओं से भिन्न होती है। इसका निहित अर्थ है कि व्यक्तियों पर समाज और सामूहिक चेतना का प्रभुत्व होता है। आइए, इस चरण पर क्रियाकलाप 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

वर्तमान युग व्यक्तिवाद का युग है और इसका पता मेरी निजता, मेरे अधिकार, मेरा स्थान, मेरा आधार, मेरा पैन, मेरा मोबाइल, मेरी कार, आदि के रूप में साफतौर पर झलकता है। ऐसी स्थिति में हम दर्खाइम की इस प्रवृत्ति को 'सामूहिक चेतना' अथवा 'नैतिक नागरिकता' के आधार को टेक देने वाला कैसे कह सकते हैं।

वास्तव में, दर्खाइम के अनुसार, व्यक्ति के हित अनिवार्यतः उस समूह के अनुसार नहीं चलते जिससे वे संबंध रखता है, ताकि समाज निर्बाध काम करता रहे और सामाजिक व्यवस्था क़ायम रहे, व्यक्तियों को नियंत्रित किए जाने और विद्यमान व्यवस्था के अनुसार चलाए जाने की आवश्यकता होती है। ऐसा नियमों की कोई संहिता तैयार करके ही किया जा सकता है और व्यक्तियों को उसका पालन करना आवश्यक होता है ताकि समूहगत हितों को क्षति न पहुँचे और न ही समाज असंगठित हो पाए। 'नीति–संहिता' व्यक्तियों के आत्म–हित की प्रबलता को नियंत्रित करने और समूह के वृहत्तर हित को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध होती है। यह नैतिक अनुशासन व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य बनाए रखता है। कमजोर नैतिक अनुशासन से (i) व्यक्ति के अहम् में वृद्धि, हो सकती है, जो कि सामाजिक सामंजस्य एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकती है, और (ii) इससे व्यक्तियों के व्यापक समुदाय के साथ संबंध कमज़ोर पड़ने लगते हैं, जिससे सामाजिक अथवा नैतिक पतन की स्थिति पैदा हो सकती है।

जैसा कि हमने इकाई 7 में अध्ययन किया था, वेबर ने *फ़र्स्टेहन* (verstehen) अर्थात् सामाजिक दृश्यघटनाओं के व्याख्यात्मक बोध पर ध्यान केंद्रित किया। आइए, *फर्स्टेहन* से उनका क्या अभिप्राय था, यह जानने के लिए बॉक्स 12.2 पर नज़र डालें।

बॉक्स 12.2 *फर्स्टेहन* अथवा व्याख्यात्मक अध्ययन

''वेबर का मत है कि किसी भी प्रकृति विज्ञानी द्वारा प्राकृतिक तथ्यों का परीक्षण बाह्य कारकों से ही होता है। उदाहरण के तौर पर, जब एक रसायनशास्त्री द्वारा किसी खास पदार्थ की विशेषताओं का अध्ययन किया जाना हो तो यह बाह्य कारकों से ही किया जा सकता है। परंतु एक समाजशास्त्री द्वारा मानव समाज और संस्कृति को समझने का प्रयास मानव होने के नाते उस समाज या संस्कृति के सहभागी या उसका अंदरूनी सदस्य बनकर ही जा सकता है। मनुष्य होने के नाते सामाजिक वैज्ञानिक को अपने विषय–वस्तु की मंशा और अनुभूति कापता होना चाहिए। इस तरह समाजशास्त्रीय व्याख्या, अन्य विज्ञानों की व्याख्या से मूलभूत रूप से भिन्न होती है। वेबर के मतानुसार, समाजशास्त्र

> को फ़र्स्टेहन (जर्मन भाषा का शब्द, जिसका अर्थ है समझना) अर्थात् अंतर्दृष्टि या व्यक्तिगत बोध की पद्धति अपनानी चाहिए। फ़र्स्टेहन पद्धति के अनुसार, समाजशास्त्री को कर्ता की भावनाओं और उसकी परिस्थिति की समझ की व्याख्या करने का प्रयास कर उसकी अभिप्रेरणा की कल्पना करनी होगी। पर क्या फ़र्स्टेहन समाजशास्त्रीय व्याख्या के लिए पर्याप्त है? वेबर के अनुसार, यह मात्र प्रथम चरण ही है। विश्लेषण का दूसरा चरण है–कार्यकारण संबंधी व्याख्या करना, यानी किसी भी सामाजिक क्रिया के छिपे कारणों को तलाशना (ईएसओ–13, खण्ड 5:15 से अनुकूलित)

वेबर के अनुसार, समाज में समय के साथ युक्तियुक्त संगठन एवं संस्थाएँ जन्म लेती हैं। वास्तव में, समय के साथ समाज के प्राचीनतर और कम युक्तिपरक रूप नवीनतर और अधिक युक्तिपरक रूपों में बदल जाते हैं। तर्कसंगतता और तर्कवाद की प्रक्रिया का अध्ययन हम इकाई 7 में पहले ही कर चुके हैं। आधुनिक समाजों में, तर्कसंगतता *ज़्वैकरैशनल* (zweckrational) कार्रवाइयों अर्थात् लक्ष्यों के संबंध में की जाने वाली कार्रवाइयों के माध्यम से दर्शाया जाता है और अधिक सरल शब्दों में, सामाजिक कार्रवाइयाँ कमोवेश लक्ष्य–निर्देशित होती हैं। प्रोटेस्टैंट धर्म, पूँजीवाद और नौकरशाही अर्थात् ये तीनों युक्तीकरण प्रक्रिया के ही परिणाम हैं। इस प्रक्रिया में, समाज के विभिन्न पहलुओं पर जितनी अधिक दृढ़ उसकी पकड़ होती है उतनी ही अधिक सचेत और नियम–नियंत्रित, सामाजिक अंतर्क्रियाएँ एवं संस्थाएँ हो जाती हैं। जब ऐसा बहुत अधिक होने लगता है तो दक्षता बढ़ती है। (अर्थात्, प्रत्याषित परिणाम पाने की वृहत्तर संभावना हो जाती है) परंतु लोगों में संसार के प्रति मोहभंग का भाव उत्पन्न होने लगता है।

बोध प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाज और सामाजिक व्यवस्था की संकल्पना .... पर ध्यान केंद्रित करती है।

ii) मार्क्स का समाज के अध्ययन पर आधारित दृष्टिकोण ..... पर टिका है।

iii) फर्स्टेहन (*Verstehen*) से आशय है ..... ।

2. समाज की कार्यप्रणाली में नैतिक कोड की भूमिका स्पष्ट कीजिए। अपना उत्तर नीचे दिए गए स्थान में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 वर्ग

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में वर्ग, वर्ग–संरचना और वर्ग संघर्ष की संकल्पना का अध्ययन हम इकाई 3 में पहले ही कर चुके हैं। इस अध्ययन के अनुसार, सामंतवादी समाजों का गठन ऐसे शासकों या राजाओं की वजह से आसानी से हो गया जिन्होंने लोगों या स्वामियों के एक वर्ग को जन्म दिया था और खेती के लिए उन्हें भूमि के विस्तृत क्षेत्र प्रदान किए अथवा जिन्हें इन राजाओं ने किसानों से कर वसूलने के अधिकार दिए थे। बदले में, इन स्वामियों को अपने राजा अथवा शासक को विभिन्न तरीकों से समर्थन देने के लिए बाध्य किया जाता था, जिनमें सैन्य बलों की देखरेख करना और करारनामें के अनुसार संग्रहित कर का एक बड़ा भाग, इन राजाओं को चुकाना शामिल था। ये सामंती स्वामी कृषिदास और किसानों को अपने अधीन कर उनसे राजा अथवा शासक द्वारा दी गई भूमि पर कृषि उत्पादन करवाते थे। यूरोप में, किसी स्वामी के नियंत्रण वाला क्षेत्र जागीर कहलाता था। सामंती समाज, तदनुसार, दो वर्गों में बँटा था–क)वे वर्ग जिसके पास उत्पादन के साधन होते थे। (स्वामी) तथा ख) वे वर्ग जिसके पास श्रम–शक्ति होती थी (कृषिदास एवं किसान)। इन कृषिदासों और किसानों से अपेक्षित था कि वे अपने जीवन–निर्वाह के लिए उन्हें आवंटित भूमि के छोटे–से टुकड़े पर काम करने के अलावा दिन के अधिकांश समय अपने स्वामी के विस्तृताकार खेतों पर भी काम करते रहें। इन कृषिदासों को अपने स्वामी की भू–संपदा अथवा जागीर से बाहर जाने की आज़ादी नहीं होती थी।

किसी भी पूँजीवादी समाज में आमतौर पर दो वर्ग नजर आते हैं। ये हैं : वह जनसमूह जो उत्पादन–साधन सम्पन्न होता है (पूँजीवादी वर्ग); और वे जिनके पास भरपूर श्रम–शक्ति होती है। उत्पादन–साधन सम्पन्न लोग जिस वर्ग का निर्माण करते हैं, वे 'मध्यवर्ग' कहलाता है और श्रम–शक्ति सम्पन्न लोग, जिनके पास उत्पादन साधन नहीं होते, 'सर्वहारा वर्ग' का निर्माण करते हैं। ये दो वर्ग एक–दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता अथवा संघर्श की स्थिति में रहते हैं। यहाँ हम वर्ग–संरचना एवं वर्ग–संघर्श पर विस्तष्त चर्चा के लिए इकाई 3 को ध्यान में रख सकते हैं। आइए, अब वर्ग संबंधी वेबर की धारणा पर नज़र डालें, हम वर्ग संबंधी मार्क्सवादी और वेबरवादी परिप्रेक्ष्यों की तुलना कर सकेंगे।

वर्ग संबंधी मैक्स वेबर की संकल्पना कमोबेश मार्क्स की संकल्पना की भाँति ही है। मैक्स ने वर्ग को उस बाज़ार स्थिति की दृष्टि से परिभाषित किया है जिसके तहत व्यक्ति–विशेष सम्मिलित होते हैं। दूसरे शब्दों में, बाजार में किसी व्यक्ति की स्थिति को आर्थिक नजर से एक श्रमिक, स्वामी, व्यापारी आदि के रूप में देखा जाता है। बाज़ार स्थिति उन जीवन–प्रत्याशाओं को निर्धारित करती है जो कोई व्यक्ति प्राप्त करता है। लेकिन, वे वर्गों के निश्चल ध्रुवीकरण संबंधी उस संकल्पना से सहमत नहीं हैं जो मार्क्स ने इन दो वर्गों मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग में प्रतिपादित की है। जहाँ मार्क्स ने वर्गों की विभेदीकरण प्रक्रिया को मान्यता दी। उन्होंने मध्य वर्ग के उदय के साथ–साथ कामगार वर्ग को कुशल और अकुशल प्रवर्गों में बाँटकर देखे जाने को भी मान्यता दी। जहाँ उस शुरूआती पूँजीवादी समाज से भिन्न, संकल्पना की प्रस्तुति सम्मिलित है, जिसमें उद्यम प्रतीकात्मक रूप से स्वामी–संचालित एवं परिवार–नियंत्रित होते थे, यहाँ उत्पादन–साधनों का स्वामित्व संयुक्त संचय के रूप में अनेक व्यक्तियों के बीच वितरित हो जाता है। उत्पादन–कार्य संयोजित करने में संलग्न प्रबंधक–वर्ग उत्पादन का पर्यवेक्षण करने के लिए अधिकारी–तंत्रीय प्राधिकरण का प्रयोग करता है। (देहनदोर्फ़, 1959)। आइए, इस चरण पर क्रियाकलाप 2 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 2

क्या आप जानते हैं कि वर्गों का वे ध्रुवीकरण जिसकी कल्पना मार्क्स ने अपने समय में की थी, उस नए पूँजीवाद के प्रसंग में अनुप्रयोज्य है जिसने एक ऐसे तकनीकी–प्रबंधकीय वर्ग को जन्म दिया है जो कि शब्द के प्रचलित अर्थ में न तो मध्यवर्ग है और न ही सर्वहारा वर्ग? अपने अध्ययन–केन्द्र के अन्य साथियों से इस परचर्चा करें।

प्रस्थिति समूह समाज में सम्मान, प्रतिष्ठा, नष्जातीयता, मूल वंश, नस्ल, धर्म, जाति, व्यवसाय एवं राष्ट्रीयता जैसे ग़ैर–आर्थिक गुणों के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं। किसी एक प्रस्थिति समूह के सदस्य अन्य प्रस्थिति समूहों के समक्ष अपनी एकात्मकता दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी एक धर्म से आने वाले लोग मानवीय एवं अलौकिक शक्तियों के बीच संबंध विषयक मान्यताओं की एक श्रृंखला 'आचार– संहिता, का पालन करते हैं। ये अभिलक्षण ही उनकी एकात्मकता का आधार बनते हैं। उदाहरण के लिए, यहाँ एकात्मकता राजनीतिक मूल्यों एवं प्रथाओं की किसी प्रदत्त श्रृंखला के प्रति वचनबद्धता से जन्म लेती है।

वर्ग, प्रस्थिति समूह और दल उस सामाजिक स्तरीकरण व्यवस्था के तीन घटक बनते हैं जिसकी वेबर ने संकल्पना की थी। वर्ग, प्रस्थिति समूहों एवं दल संबंधी वेबर की इस संकल्पना का एक महत्त्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि स्तरीकरण व्यवस्था समाज को ऐसे समूहों में बाँट देती है जिनकी पद–स्थिति किसी क्रमसूचक पैमाने पर मापी जा सकती हो। उदाहरण के लिए, व्यक्ति अथवा समूह इनमें कमोबेश कम आदर एवं प्रतिष्ठा के आधार पर विभाजित हो सकते हैं। वर्गों को निम्न, मध्य एवं उच्च वर्गों (आय के आधार पर) में बाँटा जा सकता है। राजनीतिक दलों को ऐसे वर्गों में बाँटा जा सकता है जो न्यूनाधिक अधिकार अथवा प्रभाव रखते हों। यदि कोई समूह उच्च वर्ग से संबंध रखता हो और अपेक्षाकृत अधिक प्रतिष्ठा एवं राजनीतिक अधिकार अथवा प्रभाव वाला हो तो यहाँ प्रस्थिति सामंजस्य देखा जाता है। दूसरी ओर, जब कोई समूह उच्च वर्ग से आता हो और अपेक्षाकृत कम प्रतिष्ठा अथवा सम्मान के साथ कम ही राजनीतिक प्रभाव रखता हो तो यह प्रस्थिति विसंगति की स्थिति कहलाती है, जिसका अध्ययन आनुभविक रूप से किया जा सकता है।

बैंडिक्स (1974) के अनुसार, वर्ग के अध्ययन में मार्क्स एवं वेबर के दृष्टिकोण तीन प्रकार से भिन्न हैं।

पहला, वेबर मार्क्स की इस बात से सहमत नहीं थे कि एक ही वर्ग से संबद्ध लोग मिलजुल कर संघ बनाते हैं। वे वर्ग संबंधी मार्क्स की इस संकल्पना को इस अर्थ में एक 'आदर्श प्ररूप' मानते हैं कि यह प्रेक्षित प्रवृत्तियों पर आधारित एक विवेकपूर्ण विचार था।

दूसरा, वेबर मार्क्स की वर्ग संबंधी उस संकल्पना को विस्तार प्रदान करते हैं जो कि एकल रूप से आर्थिक मापदंडों से निर्धारित होती थी। वेबर के अनुसार, उत्पादन के साधनों का स्वामित्व अथवा मजदूरी श्रम पर निर्भरता आवश्यक है परंतु विशेष मामलों में ही। वेबर का तर्क था कि भूमि, श्रमिक अथवा पूँजी के स्वामित्व संबंधी मापदंडों के अलावा, बहुत से सम्पदा वर्ग, वाणिज्यिक वर्ग, एवं सामाजिक वर्ग भी विद्यमान थे। वेबर के मत में, वर्ग स्थिति अंततः बाज़ार स्थिति ही है।

तीसरा, मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद की बाध्यकारी संरचना 'मध्यवर्गीय आदर्शवादियों' के माध्यम से कुछ विशिष्ट मान्यताओं को जन्म देती है। मध्यवर्गीय आदर्शवादियों की ये मान्यताएँ श्रमिक आंदोलन के राजनीतिक आमूल परिवर्तनवाद में योगदान देती हैं। इस बात के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कि तत्परता से समझे जाने वाले लक्ष्य श्रमिकों के वर्ग–चेतना संगठन की सफलता में अत्यधिक योगदान देते हैं, वेबर का कहना है कि ये लक्ष्य वस्तुतः 'अपने वर्ग से बाहर के लोगों (बुद्धिजीवी वर्ग) द्वारा लागू और स्पष्ट किए जाते हैं'।

12.4 श्रम – विभाजन और एकात्मकता

श्रम–विभाजन में निहित मूल धारणा किसी क्रियाकलाप को ऐसी छोटी–छोटी प्रक्रियाओं में विभाजित करना है जो व्यक्तियों कुछ खास व्यक्तियों या किसी खास जनसमूह द्वारा सम्पन्न की जाती हों। इसका उद्देश्य दक्षता बढ़ाना और क्रियाकलाप को शीघ्रता से समाप्त करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बढ़ई को कुर्सी बनानी हो तो उसके सामने दो विकल्प होंगे, पहला कि, वह पूरी कुर्सी स्वयं बनाए। ऐसा करने में उसे काफ़ी समय लग सकता है। साथ ही, हो सकता है कि वे कुर्सी की पीठ बहुत अच्छी बनाता हो, परन्तु हत्थे इतने अच्छे न बना पाता हो। कल्पना करें कि यदि उसके तीन सहकर्मी होते। तब एक हत्थे बनाता, दूसरा पीठ, और तीसरा सीट बनाकर तीनो को जोड़ देता। इससे समय और ऊर्जा की भी काफी बचत होती है। एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि एक ही कार्य बार–बार करते–करते तीनो व्यक्ति उसमे महारथ हासिल कर लेंगे और काम को भलीभांति एवं दक्षता–पूर्वक पूरा कर पायेंगे। कार उत्पादन के एक अन्य उदाहरण पर विचार करें। आजकल किसी कार का उत्पादन इससे संबद्ध कार्यों को विभाजित करके पूरा किया जाता है, जैसे– कच्चा माल प्राप्त करना, इंजन का डिज़ाइन तैयार करना कार का ढ़ाँचा तैयार करना और फिर इन सब का संयोजन आदि। कोई इंजीनियर– वर्ग इंजन का डिज़ाइन बनाता है, तो कोई तकनीशियन–वर्ग कार के विभिन्न हिस्सों को जोड़ता है, और कोई प्रबंधक समूह कच्चा–माल प्राप्त कर उत्पादन एवं विपणन का पर्येवेक्षण करता है। इनमें से कोई एक व्यक्ति मात्र कच्चा माल प्राप्त करने से लेकर उत्पादन की अंतिम अवस्था तक के संपूर्ण कार्य अपने बूते पर पूरा नही कर सकता। इस संबंध में दर्खाइम का तर्क है कि आधुनिक समाज में मिश्रित श्रम–विभाजन अभिकर्त्ताओ को संविदात्मक दायित्वों के दायरे में ले आता है। उदाहरण के लिए कोई कार विनिर्माता किसी दाम विशेष पर कच्चा माल प्राप्त करने के लिए कच्चे माल की आपूर्ति की योजना तथा कच्चे माल की लागत चुकाने के लिए धन की योजना के अनुसार कच्चे माल की आपूर्ति करने वाली फर्मो के साथ कानूनी संविदा करता है। यदि कोई भी पक्ष संविदा की शर्तो का उल्लंघन करता है, तो दूसरा पक्ष न्याय पाने के लिए कानूनी कार्रवाई का सहारा ले सकता है। इस अर्थ मे आधुनिक समाजों में श्रम–विभाजन का स्वरूप सावयवी एकात्मकता के उद्‌गमन हेतु दशाएँ उत्पन्न कर देता है। दूसरे शब्दो में, श्रम–विभाजन और अनुवर्ती सावयवी एकात्मकता कुछ विशिष्ट कानूनी एवं नैतिक दायित्वो के साथ–साथ एक कानूनी–व्यवस्था को भी जन्म देते है, जिसे क्षतिपूरक कानून कहा जाता है। इसका अर्थ है कि फर्मों द्वारा संविदा अर्थात् औपचारिक समझौता किए जाने की शर्तों का उल्लघंन करने के लिए साधारण से लेकर कठोरतम तक विभिन्न प्रकार के दण्ड या सज़ाओं का प्रावधान।

दर्खाइम का तर्क है कि श्रम–विभाजन का समाज में एक प्रकार्य अवश्य होता है। जैसा कि हमने पहले बताया था, श्रम–विभाजन का स्वरूप विभिन्न प्रकार की सामाजिक एकात्मकता में योगदान देता है, पूर्व–आधुनिक समाजों में श्रम–विभाजन जटिल नहीं था और यह इस बात पर ही आधारित था कि किसी प्रसंग विशेष में महिलाओं और पुरूषों से क्या किये जाने की उम्मीद की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति अथवा परिवार कमोबेश हर काम एक ही तरीके से करता है। वे प्रकृति एवं अलौकिकता के विषय में सामान्य तौर पर एक जैसी मान्यता भी साझा करते हैं। इस प्रकार का श्रम–विभाजन और साझा–मान्यता सिद्धांत लोगों में यांत्रिक एकात्मकता अथवा दायित्व का भाव उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत, जैसा कि हमने पहले बताया था, आधुनिक समाज विविध सम्बद्ध कौशलों एवं सक्षमता तथा प्रकार्यों की अनुवर्ती परस्पर–निर्भरता पर आधारित होते हैं। ऐसा समाज व्यक्तियों एवं परिवारों के बीच सहयोग और अन्योन्याश्रितता की भावना पर बल देता है। जैसा कि हमने कार के निर्माण के उदाहरण में गौर किया था, श्रम–विभाजन एक मोटरकार बनाने का लक्ष्य हासिल करने हेतु विभिन्न कौशलों वाले लोगों के बीच सहयोग की भावना उत्पन्न करता है। आपसी सहयोग पर आधारित इस प्रकार के सुविचारित सामाजिक संबंध सावयवी एकात्मकता को बढ़ावा देते हैं। आइए, यांत्रिक और सावयवी एकात्मकता के अंतर को समझने के लिए बॉक्स 12.3 पर नज़र डालें।

बॉक्स 12.3 एकात्मकता के प्रकार

(i) यांत्रिक एकात्मकता

''जैसा कि आप जानते हैं, यांत्रिक एकात्मकता से अभिप्राय है–समरूपता अथवा एक जैसा होने की परस्पर निर्भरता। ऐसी अनेक समरूपताएँ तथा घनिष्ठ सामाजिक रिश्ते होते हैं जो व्यक्ति को उसके समाज से बाँधे रखते हैं। सामूहिक चेतना अत्यंत सुदृढ़ होती है। सामूहिक चेतना से हमारा अभिप्राय उन साझा मान्यताओं तथा भावनाओं से है जिनके आधार पर समाज के लोगों के आपसी संबंध परिभाषित होते हैं। सामूहिक चेतना की शक्ति इस प्रकार के समाजों को एकजुट रखती है और व्यक्तियों को दृढ़ मान्यताओं और मूल्यों के माध्यम से एक–दूसरे से जोड़े रखती है। इन मूल्यों की उपेक्षा या उल्लंघन के मामलों को बहुत गंभीर माना जाता है। दोषी लोगों को कठोर दण्ड मिलता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि यांत्रिक एकात्मकता पर आधारित समाज में एकरूपता अथवा समरूपता की एकात्मकता होती है। यहाँ व्यक्तिगत भिन्नताएँ बहुत कम होती हैं तथा श्रम–विभाजन अपेक्षाकृत सरल स्तर का होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस प्रकार के समाजों में व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना में विलीन हो जाती है।''

(ii) सावयवी एकात्मकता

सावयवी एकात्मकता से दर्खाइम का तात्पर्य है–भिन्नताओं एवं भिन्नताओं की पूरकता पर आधारित एकात्मकता। एक कारखाने का उदाहरण लें। यहाँ कामगार तथा प्रबंधक के कार्य, आय, सामाजिक प्रस्थिति आदि में काफ़ी अंतर होता है। किन्तु साथ ही, वे एक–दूसरे के पूरक भी होते हैं। श्रमिकों के बिना प्रबंधक का होना व्यर्थ है और श्रमिकों को संगंठित होने के लिए प्रबंधकों की आवश्यकता होती है। उनका अस्तित्व एक–दूसरे पर निर्भर होता है।

सावयवी एकात्मकता पर आधारित समाज औद्योगीकरण के विकास से प्रभावित और इसके फलस्वरूप परिवर्तित होते हैं। इसलिए श्रम–विभाजन इस प्रकार के समाजों का एक उल्लेखनीय पक्ष होता है। सावयवी एकात्मकता पर आधारित समाज वे समाज होते हैं जिनमें विषमता, भिन्नता तथा विविधता होती है। **विषम** समाज में बढ़ती हुई यह जटिलता विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व में संबंधों तथा समस्याओं में प्रतिबिंबित होती है। ऐसे समाजों में व्यक्तिगत चेतना विशिष्ट हो जाती है और सामूहिक चेतना दुर्बल होने लगती है। व्यक्तिवाद का महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। यांत्रिक एकात्मकता में सामाजिक प्रतिमान का जो बंधन व्यक्तियों पर रहता है, वे ऐसे समाजों में ढ़ीला पड़ जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता का सावयविक एकात्मकता पर आधारित समाज में उतना ही महत्त्व होता है, जितना कि सामाजिक एकात्मकता एवं एकीकरण का महत्त्व यांत्रिक एकात्मकता पर आधारित समाजों में होता हैं। (ईएसओ 13, खण्ड 5:41 से अनुकूलित)

ऐमिल दर्खाइम का सरोकार समुदायों के जीवन में एकात्मकता और सामूहिक चेतना के प्रतीकों को पहचान प्रदान करने से रहा है। उनका कहना था कि धर्म एक ऐसी संस्था है जो समाज की आवश्यकताओं के अनुसार चलने हेतु नैतिक दायित्व का भाव उत्पन्न करती है और इन दायित्वों को अंगीकृत करने में मदद करती है। धर्म विश्व को दो वर्गों में बाँटकर चलता है–धार्मिक अर्थात् पवित्र तथा अधार्मिक अर्थात् लौकिक या सांसारिक। धार्मिक अथवा पवित्रता की अवधारणा उन वस्तुओं से संबंध रखती है जिन्हें उत्कृष्ट एवं असाधारण माना जाता है तथा लौकिकता अर्थ होता है–आम किस्म की वस्तुएँ। धर्म धार्मिक या पवित्रता वाली विषयक मान्यताओं एवं प्रथाओं वाली व्यवस्था का ही नाम है। ऑस्ट्रेलियाई मूल के आदिवासी समुदायों संबंधी अपने अध्ययन के आधार पर दर्खाइम ने पाया कि उनका धर्म आशावादी किस्म का होता है। आदिवासी समाज कुलों या गोत्रों में बँटा होता है। उनकी एकात्मकता का प्रथम आधार कुल ही होता है। कुल से ही किसी व्यक्ति की पहचान बनाने और उसके प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखने के लिए, किसी वस्तु–वृक्ष अथवा किसी पशु का प्रतीक अर्थात् गण–चिन्ह टोटम के रूप में चुन लिया जाता है जो कि उस कुल का प्रतीकात्मक प्रतिबिंब होता है।

उक्त गण–चिन्ह टोटम पवित्र होता है और इसलिए इसे संरक्षण और सम्मान दिया जाता है। कुल (clan) (कुल के भीतर ही विवाह कर लेना वर्जित होता है।) असंबद्ध युग्मकों का सम्मिलित होता है और यह एक समूहगत दल होता है जो कुल और समुदाय के संसाधनों की रक्षार्थ मिलकर काम करता है। इस प्रकार जन्मी एकात्मकता, दर्खाइम के अनुसार, यांत्रिक एकात्मकता होती है क्योंकि ऐसी एकात्मकता के तहत हरेक परिवार अन्य परिवारों के साथ मिलकर समान किस्म के क्रियाकलापों में ही लीन रहता है। इसके विपरीत किसी औद्योगिक समाज के उदाहरण में, किसी उत्पादन इकाई के रूप में समुदाय अथवा कुल अथवा परिवार का स्थान उत्पादन इकाई के ही रूप में व्यक्ति–विशेष ले लेता है। इससे साझी भौतिक दशाओं का आधार और कोई खास किस्म की आस्था की पद्धति का निराकरण होता है और इसलिए साझी भौतिक दशाओं तथा प्रकृति एवं समाज विषयक मान्यताओं पर आधारित एकात्मकता भी समाप्त होने लगती है। चूँकि अब समाज वृत्ति और कोशलपरक आमदनी की दृष्टि से भिन्नता को दर्शाता है और परिवार के सदस्यों की आय के स्रोत भी अब एक समान नहीं रहते। कृषिक समाजों की तुलना में, जहाँ समस्त परिवार की आय का स्रोत भूमि होता है, आधुनिक समाजों में उत्पादन की इकाई व्यक्ति–विशेष होता है। उदाहरण के लिए,

आधुनिक समाज में, एक ही आवासीय इकाई अथवा कुटुंब में रहने वाले परिवार के सदस्यों में से, पिता संभवतः अध्यापक हो, माँ स्व–रोजगार प्राप्त व्यक्ति और उनके पुत्र/पुत्री शायद कोई सरकारी नौकर हो। इस संदर्भ में, उनके अस्तित्व की भौतिक दषाएँ और आय के स्रोत, भिन्न–भिन्न होंगे। यदि किसी समाज में परिवारों के सभी सदस्य भिन्न–भिन्न भूमिकाएँ निभातें हो तो एकात्मकता का आधार यांत्रिक आधार से सावयवी आधार अथवा एक साधारण श्रम–विभाजन से एक जटिल श्रम–विभाजन हो जाता है, और इससे उस एकात्मकता की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जो सुविचारित, सुसंस्कृत एवं संगठित एकात्मकता अर्थात सावयवी एकात्मकता पर टिकी होती है।

यद्यपि मार्क्स ने वर्ग की दृष्टि से सामूहिक पहचान और कार्रवाई पर जोर दिया, जबकि वेबर ने केवल वर्ग की बजाए अर्थात प्रस्थिति, समूह पर ही नहीं बल्कि पहचान (अस्मिता), एकात्मकता और कार्रवाई को समझने और इनकी गहनता का अध्ययन करने का प्रयास किया। मैक्स वेबर के अनुसार, एकात्मकता किसी एक सामाजिक आधार की बजाए बहुत से अन्य सामाजिक आधारों पर निर्भर कर सकती हैं। इनके विषय में आप भाग 12.3 में पहले ही पढ़ चुके है।

बोध प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

i) वेबर वर्ग को व्यक्ति–विशेष पर आधारित ..... की दृष्टि से परिभाषित करते हैं।

ii) प्रस्थिति समूह ..... सहज विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं।

iii) वेबर के अनुसार, वर्ग संबंधी मार्क्सवादी संकल्पना एक ..... है।

2. श्रम–विभाजन के परिणामों पर मार्क्स के विचार स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

पिछली इकाइयों में उस सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश पर चर्चा की गई थी जिसने मार्क्स, दर्खाइम और वेबर के महत्वपूर्ण विचारों को प्रभावित किया था। वहाँ हमने समाजशास्त्र में मार्क्स, दर्खाइम और वेबर के प्रमुख योगदानों का अध्ययन किया था।

इस इकाई में, हमने समाज, वर्ग एवं एकात्मकता विशयक उक्त विचारकों के दृष्टिकोणों में समानताओं एवं भिन्नताओं का अध्ययन किया। वर्ग संबंधी मैक्स वेबर की संकल्पना कमोबेश मार्क्स की संकल्पना के समान ही है। उन्होंने वर्ग को उस बाजार स्थिति में परिभाषित किया जहाँ व्यक्ति–विशेष हो। दूसरे शब्दों में, जहाँ बाज़ार में किसी व्यक्ति–विशेष की स्थिति एक श्रमिक, स्वामी अथवा व्यापारी आदि के रूप में आर्थिक रूप से निर्धारित की जाती हो। हालांकि, वे वर्गों की स्थिर ध्रुवीकरण संबंधी उस धारणा से सहमत नहीं है जिसे मार्क्स ने दो रूपों में – मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग के रूप में प्रतिपादित किया था। उन्होंने वर्गों की विभेदीकरण प्रक्रिया को मान्यता दी, मध्यवर्ग के उद्‌गमन को मान्यता दी और श्रमजीवी वर्ग को कुशल और अकुशल वर्गों के रूप में बाँटकर देखा। उस शुरूआती पूँजीवादी समाज से भिन्न, जहाँ उद्यम प्रतीकात्मक रूप से, स्वामी–संचालित एवं परिवार–नियंत्रित होते थे, यहाँ उत्पादन साधनों का स्वामित्व संयुक्त संचय स्वरूप में अनेक व्यक्तियों में वितरित हो जाता है। इकाई में हमने इस बात को समझा कि कि एकात्मकता समाज में किस प्रकार साफतौर पर नजर आती है।

12.6 संदर्भ

बैंडिक्स, रेनहार्ड (1974), इनइक्वालिटी एंड सोशल स्ट्रक्चरः ए कम्पैरिज़न ऑफ़ मार्क्स एंड वेबर, *अमेरिकन सोशिऑलॉजिकल रिव्यु,* 39 (2), 149 — 161.

देहनदोर्फ़, शल्फ़ (1959), *क्लास एंड क्लास कान्फिलिक्ट इन ऐन इण्डस्ट्रियल सोसाइटी,* लन्दनः रूटलेज एंड केगन पॉल।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005), *समाजशास्त्रीय सिद्धांत* (ईएसओ 13), नई दिल्ली : इग्नू

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. i) उत्पादन की प्रमुख रीतियाँ

   ii) वर्ग असमानता और वर्ग–संघर्ष

   iii) समाज का व्याख्यात्मक अध्ययन

2. दर्खाइम का मानना था कि किसी भी व्यक्ति–विशेष के हित आवश्यक नहीं कि उस समूह के हितों के अनुरूप ही हों जिससे वह संबंध रखता हो। नैतिक कोड व्यक्ति के हितों पर नियंत्रण लगाने और समाज के वृहत्तर हित को प्रोत्साहन देने का काम करती है। यह समाज को सुचारु ढंग से चलने के योग्य बनाती है और सामाजिक व्यवस्था को क़ायम रखती है। नैतिक अनुशासन व्यक्ति–विशेष और समाज के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बनाए रखता है।

बोध प्रश्न 2

1. i) बाजार स्थिति

   ii) गैर–आर्थिक किस्म की सहज विशेषताएँ

   iii) आदर्श प्ररूप

2. मार्क्स के अनुसार, पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों पर श्रम–विभाजन को थोपा जाता है। इससे कार्यबल अमानवीय रूप धारण करता है, जो दर्शाता है कि इनकी मेहनत–मशक्कत एक वस्तु है जिसका बाजार में दाम लगा कर, इसे खरीदा/बेचा जा सकता है। उन्हें उत्पादन प्रक्रिया का मात्र एक हिस्सा माना जाता है जहाँ मनुष्य के रूप में उनकी कठिनाइयों से उनके नियोक्ता का कोई सरोकार नहीं होता। उत्पादन व्यवस्था के भाग के रूप में भी उत्पादन प्रक्रिया के सभी स्तरों पर इनका कोई नियंत्रण नहीं होता, ये कुल मिलाकर अपने कामकाज, अपने जैसे अन्य कामगारों और सामाजिक व्यवस्था से ही पूरी तरह अलग–थलग ही बने रहते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

शब्दावली

पूँजीवाद (Capitalism) : यह समाज के ऐतिहासिक चरणों में एक है जिसमें उत्पादन के साधनों (अर्थात्– पूँजी, श्रम एवं यंत्र–समूह) पर निजी स्वामित्व होता है।

आर्थिक संरचना (Economic Structure) : उत्पादन संबंधों का कुल योग, अर्थात्–वे सामाजिक सम्बन्ध जो लोगों को जीवन की भौतिक दशाओं के संबंध में बनाने और निभाने पड़ते हैं।

श्रम–शक्ति (Labour Power) : इसका अर्थ है– कार्य करने हेतु श्रमिक की क्षमता। इसमें शारीरिक शक्ति, कौशल एवं तकनीकी विशेषज्ञता सम्मिलित हैं।

अवसंरचना (Superstructure) : मार्क्स के अनुसार, आर्थिक संस्थाओं के सिवाय अन्य सभी संस्थाएँ किसी भी समाज की अवसंरचना का निर्माण करती हैं।

द्वंद्ववाद : दो परस्पर विरोधी शक्तियों अथवा प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद : यह वह मार्क्सवादी सिद्धांत है जो प्रत्येक वस्तु की व्याख्या

भौतिकवाद : परिवर्तन के संदर्भ में करता है यह परिवर्तन पदार्थ में अंतर्निहित परस्पर विरोधी शक्तियों के निरंतर विरोधाभास के कारण होता है।

निषेध : एक नई अवस्था, जो कि गुणात्मक परिवर्तन का परिणाम होती है तथा प्राचीन को प्रतिस्थापित करने के लिये एक प्रगतिशील परिवर्तन है।

निषेध का निषेध : जब कोई वस्तु किसी प्राचीन व्यवस्था के निषेध के फलस्वरुप अस्तित्व में आती है तथा दुबारा इस वस्तु का निषेध गुणात्मक परिवर्तन के माध्यम से हो जाता है।

गुणात्मक परिवर्तन : नये का प्रादुर्भाव या प्राचीन की विलुप्ति गुणात्मक परिवर्तन है।

मात्रात्मक परिवर्तन : किसी भी वस्तु में ऐसा छोटा अथवा बड़ा परिवर्तन जिसमें कि वस्तु की पहचान परिवर्तित नहीं होती।

बुर्जुआ : वे लोग जिनके पास उत्पादन के साधन का स्वामित्व हैं। उदाहरण के लिये, सामन्तवादी युग में भूपति, पूंजीपति युग में उद्योगपति

सर्वहारा : वे लोग, जिनके पास अपनी श्रमशक्ति के अतिरिक्त किसी भी उत्पादन के साधन का स्वामित्व नहीं है। अतः समान्तवादी समाज में सभी भूमिहीन किसान और कृषक मज़दूर तथा पूंजीवादी समाज में सभी औद्योगिक श्रमिक सर्वहारा की श्रेणी में आते हैं।

वर्ग : वे लोग, जिनके उत्पादन के साधनों से समान सम्बन्ध होते हैं, अर्थात् अपने समान हितों के प्रति जिनमें समान जागरूकता पाई जाती है। वे एक से वर्ग का निर्माण करते हैं।

वर्ग हित : किसी भी सामाजिक वर्ग के इतिहास, आकांक्षायें और मान्यताएँ, जिनमें उसके सदस्य समान रूप से विश्वास करते हैं।

वर्ग चेतना : अन्य व्यक्तियों की निष्पक्ष (objective) वर्ग स्थिति की तुलना में अपनी

वर्ग स्थिति के बारे में जागरूकता तथा समाज के परिवर्तन में इसकी ऐतिहासिक भूमिका के बारे में जागरूकता।

उत्पादन के साधन : उत्पादन के लिये आवश्यक सभी साधन। इसमें शामिल हैं, उदाहरण के लिये भूमि, कच्चा माल, फैक्ट्री, पूंजी तथा श्रम, आदि।

उत्पादन के सम्बन्ध : मार्क्स के अनुसार उत्पादन शक्तियां उत्पादनद के सम्बन्धों की प्रकृति को निर्धारित करती हैं। वस्तुतः ये उत्पादन की प्रक्रिया में पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्ध अथवा आर्थिक भूमिकायें हैं, उदाहरण के लिये सामन्तवादी समाज में कृषक मज़दूरों तथा भूपति के मध्य संबंध एवं पूंजीपति समाज में पूंजीपति तथा औद्योगिक श्रमिक के मध्य संबंध।

उत्पादन प्रणाली : इसका तात्पर्य सामान्य आर्थिक संस्था से हैं, जिसे दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह वह विशिष्ट तरीका है, जिसके द्वारा लोग जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण करते है। उत्पादन की शक्ति और उत्पादन के संबंध दोनों मिलकर उत्पादन प्रणाली को परिभाषित करते हैं, उदाहरण के लिये पूंजीवादी उत्पादन के तरीके, सामन्तवादी उत्पादन के तरीकें।

वर्ग संघर्ष : जब विपरीत एवं परस्पर विरोधी वर्ग हितों वाले वर्ग आपस में टकराते हैं ताकि वे अपने वर्ग हितों की रक्षा कर सकें, यह वर्ग संघर्ष कहलाता है।

पूंजीवाद : यह समाज की वह ऐतिहासिक अवस्था हैं, जिसमें उत्पादन के साधन मुख्यतया मशीनरी, पूंजी तथा श्रम होते हैं।

सामंतवाद : यह समाज की वह ऐतिहासिक अवस्था हैं, जिसमें उत्पादन के साधन भूमि एवं श्रम होते हैं।

क्रांति : वर्ग संघर्ष की परिपक्व दशाओं तथा वर्ग संघर्ष के अत्यधिक बढ़ने के कारण समाज में लाया गया पूर्ण तथा आमूल परिवर्तन क्रांति कहलाता है।

अधोसंरचना : मार्क्स के अनुसार किसी भी समाज की आधारशिला उस समाज की आर्थिक संरचना होती है अथवा दूसरे शब्दों में अधोसंरचना होती है। यह मूलतः उत्पादन प्रणाली से बनती है। अतः इसमें उत्पादन शक्तियां और उत्पादन संबंध सम्मलित होते हैं। इसी के ऊपर समाज की अधिसरंचना टिकी होती हैं।

अधिसंरचना : यह समाज की अधोसरंचना पर टिकी होती है, इसके अन्तर्गत समाज की आर्थिक संस्थाओं के अतिरिक्त सभी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाये आती हैं।

सामूहिक चेतना (Collective Conscience) : दर्खाइम के अनुसार सामूहिक चेतना समाज में व्याप्त मान्यताओं, प्रथाओं और समग्र समाज की सहज भावनाओं का एक पिंड है तथा इससे सामाजिक जीवन को सामाजिक उद्देश्य और प्राधार मिलता है।

सामूहिक : परस्पर अन्तःक्रिया कर रहे व्यक्तियों द्वारा निर्मित एक संयुक्त क्रिया, विचार या आदर्श।

अनुभव सिद्ध : वस्तुपरक तरीके से आंकड़ों को इकट्ठा करने के लिए अवलोकन तथा अन्य परीक्षित पद्धतियों का प्रयोग।

होर्ड (Horde) : ऐसे लोगों का समूह जो परस्पर नातेदारी संबंध से जुड़े हों। ये प्रायः खानाबदोश शिकारियों व खाद्य संचयी समूहों में पाये जाते है।

प्रतिमान : यह क्रिया का विशिष्ट मार्गदर्शक है जो यह परिभाषित करता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में क्या उचित व स्वीकृत व्यवहार है।

बहुखण्डीय : एक से अधिक खण्ड से निर्मित।

प्रतिबंध : आदर्श को लागू करने के लिए पुरस्कार व दण्ड। पहले को सकारात्मक व दूसरे को नकारात्मक प्रतिबंध करते है।

समाजीकरण : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की संस्कृति सीखते है।

सामाजिक विज्ञान : एक ऐसी पद्धति जिसका प्रयोग उन मानव संबंधों व संगठनों के स्वयपों का वैज्ञानिक अध्ययन करने में किया जाता है जो समाज में व्यक्तियों को एक साथ रखने के लिए उत्तरदायी है।

सूई जेनेरिस (sui generis) : वह जो स्वयं से उत्पन्न हो, वह जिसका अस्तित्व स्वंय में हो, वह जो अपने उद्भव तथा अस्तित्व के लिए अन्य वस्तुओं पर निर्भर न हो, दर्खाइम ने समाज को सुई जेनेरिस् माना है। यह सदैव उपस्थित रहता है तथा इसके उद्भव का कोई बिन्दु नहीं है। (यह शब्द यूरोप की शास्त्रीय भाषा का है।)

कुल (clan) : क्लैन (clan) का हिन्दी शब्द कुल है। इसको कई वंशजों के ऐसे समूह के लिए प्रयोग करते हैं जिसके सदस्य अपने को किसी दूरस्थ अथवा काल्पित पूर्वज की संतान मानते है। आदिम समाजों में पूर्वज को दर्शाने वाले प्रतीक में पशु, पौधा अथवा प्राकृतिक शक्तियों के स्त्रोत शामिल हो सकते हैं। यह रक्त समूह होता है तथा इसके अन्दर विवाह नहीं होता है।

विश्वास : ऐसे विचार व भावनाएं जो समाज में व्यक्तियों की क्रियाओं को संचालित करते हैं विश्वास कहलाते हैं।

प्रथा : जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले सामाजिक मान्यता प्राप्त व्यवहार को प्रथा कहते हैं। इस व्यवहार का उल्लंघन, सामाजिक दबाव के कारण, सामाजिक रुप से अनुचित माना जाता है। प्रथाओं की शक्ति के सामने राज्य की शक्ति भी दुर्बल प्रतीत होती है।

वंश–परम्परा (Lineage) : रक्त मूलक, एकपक्षीय समूह को वंश–परम्परा कहते हैं जिसके सदस्य रक्त द्वारा अपने पूर्वजों से जुड़े होते हैं। पूर्वजों से जुड़ी कड़ियां सदस्यों को ज्ञात होती हैं। प्रत्येक कड़ी का पूरा ज्ञान कुल में प्रायः नहीं होता।

सामूहिक चेतना : किसी समाज के सदस्यों के बीच समान विश्वासों, मान्यताओं एवं भावनाओं की एक व्यवस्था की रचना को सामूहिक चेतना कहते हैं।

सामाजिक एकात्मकता : किसी समूह की उस स्थिति को सामाजिक एकात्मकता कहते हैं जिसमें सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग, सद्भाव में सामूहिकता होती हो तथा जो सामाजिक संगठन को उसके स्थायित्व

के माध्यम से दर्शाता हो। समाज का उक्त स्वरूप सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में बदलता रहता है। इसी कारण दर्खाइम ने दो प्रकार के समाजों में दो प्रकार की एकात्मकताओं को बताया है।

यांत्रिक एकात्मकता : अविकसित समाजों में सरल सामाजिक संरचना के नाते समरूपता का लक्षण था। जिसके व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व सामूहिक व्यक्तित्व में विलय हो जाता था तथा वह प्रथाओं, धर्म के नियंत्रण से यंत्रवत कार्य करता था। इसी कारण ऐसी सामाजिक एकात्मकता को दर्खाइम ने यांत्रिक एकात्मकता कहा है।

सावयवी एकात्मकता : विकसित समाजों में जटिल सामाजिक संरचना कार्य के अत्यधिक विभाजन से हुई, किन्तु विभाजित कार्य की असमानता ने समाज के व्यक्तियों को आवश्यकताओं के संदर्भ में एक दूसरे पर आश्रित बना दिया। समाज में विद्यमान इन गुणों के कारण व्यक्ति को एक दूसरे से जुड़े रहने को दर्खाइम ने सावयवी एकात्मकता कहा है।

दण्डात्मक कानून : इसका प्रयोग दर्खाइम ने यांत्रिक एकात्मकता को समझाने में किया है। इसका उद्देश्य सामूहिक चेतना अथवा सामूहिक इच्छा के विरुद्ध कार्यों को रोकना है।

क्षति–पूरक कानून : इस कानून को दर्खाइम ने आधुनिक समाज की संरचनात्मक विशेषता को समझाने के लिए किया है तथा इसके द्वारा जिसे हानि हुई है उसकी क्षति–पूर्ति का अवसर दिया जाता है।

प्राधिकार (Authority) : यह किसी व्यक्ति/समूह की अन्य लोगों के व्यवहार को प्रभावित अथवा नियंत्रित करने की वैध क्षमता है। वेबर के अनुसार, प्राधिकार तीन प्रकार के होते हैं– परम्परागत प्राधिकार, चमत्कारिक प्राधिकार, एवं युक्तियुक्त वैध प्राधिकार।

मोहभंग (Disenchantment) : यह एक भाव हैं जो निराशा एवं किसी ऐसी वस्तु में रुचि का अभाव दर्शाता है जिसकी व्यक्ति पहले प्रशंसा करता था और उसे पाने को लालायित होता है।

भावात्मक कार्य (affective action) : ऐसी क्रिया जो किसी भावनात्मक स्थिति के प्रभाव में की जाए

नौकरशाही (bureaucracy) : प्रशासन की ऐसी प्रणाली जो श्रम विभाजन, कर्मचारियों के पद–क्रम, कामकाज चलाने के नियमों की औपचारिक संस्था, लिखित प्रलेखों, निर्वैयक्तिक संबंधों, योग्यता के आधार पर नियुक्ति तथा निजी और सरकारी आय के विभेद पर आधारित हो

कल्विन धर्म (calvinism) : ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेंट धर्म की चार मुख्य धाराएं हैं–मैथाडिज़्म, पाइटिज्म, बैप्टिज्म और कल्विनिज्म। कल्विन धर्म के तीन मुख्य आधारभूत सिद्धांत है– ब्रहमांड ईश्वर के महान गौरव के प्रसार के लिए बनाया गया है, सर्वशक्तिमान ईश्वर की लीला के उद्देश्य मानवीय समझ से परे है, तथा बहुत थोड़े से लोग ईश्वर की शाश्वत कृपा के लिए चुने जाते है, अर्थात् पूर्वानियति में विश्वास।

पूंजीवाद : ऐसा आर्थिक संगठन जिसमें सम्पत्ति का निजी स्वामित्व, पूंजी पर निजी नियंत्रण, बाजार प्रणाली और श्रमिकों की व्यवस्था हो तथा

जिसका लक्ष्य अधिक से अधिक लाभ कमाना हो

करिश्माई अथवा चमत्कारिक सत्ता (charismatic authority) : ऐसी सत्ता में नेता के आदेश इसलिए माने जाते है, क्योंकि अनुयायियों को नेता के असाधारण गुणों में विश्वास होता है।

तर्क–विधिक सत्ता (legal-rational authority) : इस प्रकार की सत्ता में नियमित और सार्वजनिक प्रक्रिया से बने नियमों का पालन किया जाता है।

प्रोटेस्टेंट नैतिकता : ईसाई धर्म का एक सिद्धांत, जिससे पूंजीवाद के सांस्कृतिक स्वरूप का प्रमुख अंश बना है जैसे– व्यक्तिवाद, उपलब्धियों के लिए प्रेरणा, विरासत में मिली संपत्ति और विलासिता का विरोध, काम तथा मुनाफे पर जोर, जादू–टोने तथा अंधविश्वास का विरोध एंव तर्कसंगत संगठन के लिए प्रतिबद्धता।

शक्ति (power) : दूसरों पर अपनी इच्छा थोपने की क्षमता

आदर्श प्ररूप (ideal type) : वेबर द्वारा विकसित एक शोध पद्धति का साधन जिसमें किसी वस्तु या घटना के सामान्य लक्षणों को सिद्धांत रूप में व्यक्त किया जाता है। आदर्श प्ररूप एक विश्लेषणात्मक विधि है, जिससे समाजशास्त्री अपने समय की वास्तविकताओं की तुलना करता है।

सामान्यीकरण (routinisaton) : करिश्माई अथवा चमत्कारिक सत्ता के पांररिक अथवा तर्क–विधिक सत्ता में परिवर्तित होने की प्रक्रिया

धन–अर्थव्यवस्था (money-economy) : धन द्वारा किया गया कोई भी आर्थिक लेन–देन

सामूहिक प्रतिनिधान (Collective representations) : इससे दर्खाइम का तात्पर्य है समाज के वे भी विचार, कल्पनाएं और परिकल्पनाएं जो समान होती हैं। उदाहरण के लिये सौदंर्य, सत्य, सही, गलत आदि।

नैतिक पैग़म्बर (Ethical prophets) : ये लोगों कों प्रभावशाली उपदेश देते हैं, जो अक्सर धार्मिक होते हैं। वे पुरानी सामाजिक व्यवस्था का पतन चाहते हैं जिसे वे बुरा मानते हैं। वे अनुयायियों को एक नयी दिशा देते हैं और ईश्वर से संपर्क सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम पैग़म्बरों के धर्म हैं।

आनुभाविक (Empirical) : अनुभव, प्रेक्षण पर आधारित

तर्कसंगतिकरण (Rationalization) : विचारों से जादुई तत्वों को हटाकर उन्हें एकरूप और व्यवस्थित बनाना।

पवित्र और लौकिकक क्षेत्र : दर्खाइम के अनुसार विश्व को इन दो क्षेत्रों में बांटा जाता है। पवित्र क्षेत्र, शुद्व और उच्च स्तर का होता है। जबकि लौकिक क्षेत्र साधारण या आम वस्तुओं से संबद्व हैं।

टोटमवाद : प्राचीन धर्म जिसमें किसी पशु, पेड़ पौधे आदि को समूह का पूर्वज माना जाता है, जिसकी पूजा होती हैं।

प्रतिमानहीनता (anomie) : दर्खाइम ने इस शब्द का प्रयोग प्रतिमानहीनता (Anomie) के रूप में एक ऐसी दशा के सन्दर्भ में किया जिसमें व्यक्तियों के व्यवहार को

नियमित करने वाले समूह–नियमों के सन्दर्भ में उल्लंघन या संभ्रांति पाई जाती है। यह सामाजिक मानदंडों या प्रतिमानों के अभाव की स्थिति होती है। ऐसी स्थिति में, व्यक्ति स्वयं को समाज के साथ एकीकृत अथवा उससे नैतिक रूप से जुड़ा महसूस नहीं करता। इस स्थिति में व्यक्ति अपने आपकों समाज में रचा–बसा हुआ महसूस नहीं करते।

असेम्बली लाइन : यह आधुनिक फैक्ट्री प्रणाली का एक तत्व हैं, जिसमें श्रमिक किसी वस्तु के विभिन्न हिस्सों पुर्जों को ''एसेम्बल'' करते अर्थात् जोड़तें हैं अथवा उनपर कुछ काम करते हैं, इसमें प्रत्येक श्रमिक का अपना निश्चित काम होता है। इससे उत्पादन में गति आती है।

ईश्वरीय आह्वान (calling) : किसी कार्य या पेश को ऐसा पवित्र कर्त्तव्य मान कर करना, जिसके लिए स्वयं ईश्वर ने व्यक्ति विशेष को निर्देश दिया हो। काम काज को न सिर्फ आर्थिक आवश्यकता बल्कि धार्मिक कर्तव्य मानना।

कार्टैल (cartel) : उद्योगपतियों का ऐसा समूह, जो मिलकर बाज़ार पर एकाधिकार या पूर्ण नियंत्रण कर लेता है।

पूरक (complementary) : ऐसा काम जिससे सहायता या समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए नर्स की भूमिका डाक्टर की भूमिका की पूरक हैं

जीवन–अवसर (Life-Chances) : वे अवसर जो कोई व्यक्ति जीवन के विभिन्न चरणों में प्राप्त करता है, जीवन–अवसर कहलाते हैं। किसी श्रमिक के बेटे का उदाहरण लें। वे किसी खास प्रकार की शिक्षा लेता है और विशिष्ट कौशल हासिल करता है जो उसे किसी खास प्रकार का व्यवसाय अपनाने के लिये तैयार कर देते हैं। वास्तव में, हम यहाँ ऐसे अनेक अपवादों की बात नहीं कर रहे हैं जहाँ किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जाने वाली षिक्षा एवं कौशल उसके माता–पिता को प्राप्त शिक्षा एवं कौशल से भिन्न होते हैं। वेबर का मानना था कि जीवन–अवसर किसी भी वर्ग के महत्वपूर्ण पहलू कहलाते हैं। किसी एक वर्ग से आने वाले लोग एक ही प्रकार के जीवन–अवसर साझा करते हैं। वे बाजार के साथ भी एक समान सम्बन्ध रखते हैं जिसे बाजार स्थिति कहा जाता है।

बाजार स्थिति (Market Situation) : वे संभावनाएँ जो पैसे के बदले किसी वस्तु को लेते समय विद्यमान होती हैं।

एकात्मकता (Solidarity) : समाज में समग्र एकता, सामाजिक संसक्ति एवं आपसी सहयोग की स्थिति।

प्रस्थिति समूह (Status Group) : उन लोगों का समूह जो सर्वसामान्य प्रस्थिति की दशा साझा करते हों। किसी व्यक्ति की प्रस्थिति की दशा का अर्थ होता है – वे मूल्यांकन जो अन्य लोग उसकी सामाजिक स्थिति के विषय में करते हैं। वर्ग से भिन्न, किसी प्रस्थिति समूह विशेष से आने वाले लोग अपनी सर्वसामान्य प्रस्थिति के प्रति सचेत होते हैं। प्रायः, प्रस्थिति समूह किसी विषेश जीवन–शैली व अन्य लोगों के साथ अंतःक्रिया के तरीके को अपना कर अपनी विशिष्टता दर्शाते हैं।

(अ) कुछ उपयोगी पुस्तकें

दर्खाइम, एमिल, (1950). *द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड.* अनुवादक एस. ए. सोलोवे एण्ड जे. एच. म्यूलर तथा (सम्पादित) ई. जी. कैटलिन, द फ्री प्रेस, न्यूयार्क : ग्लेनको

दर्खाइम, एमिल, (1964). *द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी.* द फ्री प्रेस, न्यूयार्क : ग्लेनको

निस्बत, आर. ए., (1974). *द सोशियोलॉजी ऑफ एमिल दर्खाइम.* न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

मार्क्स, कार्ल, और एंगल्स एफ (1938) *जर्मन आइडियॉलोजी.* लंदन : लॉरेन्स एण्ड विमहॉर्ट

मैकिंटाष, इयन (सम्पा) (1997). क्लासिकल सोशियोलॉजिकल थियरीए रीडर, न्यूयॉर्क

कॉलिन्स, रैंडल, (1985). *थ्री सोशियोलॉजिकल ट्रेडिशन्स.* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

ऐलन कीयर्न (2004). *मैक्स वेबरः ए क्रिटिकल इंट्रोडक्शन.* मिशिगन : प्लूटो प्रैस

बेंडिक्स, आर., (1960). *मैक्स वेबरः एन इंटेलेक्चअल पोट्रेट.* : न्यूयार्क

कोजर, एल.ए. (1977). *मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉटः आइडियाज इन हिस्टोरिकल एंड सोषल कॉन्टेक्स्ट.* न्यूयार्क : हरकोर्ट प्रेस जोवानोविच

गर्थ एच.एच.एड मिल्स, सी. डब्ल्यू. (सम्पादक) (1952). *फ्रॉम मैक्स वेबरः एस्सेज इन सोशियोलॉजी.* लंदन : रूटलेज एंड केगनपॉल

मिचेल, जी. डी.(संपादित), (1968). *ए डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी.* लंदन *: रूटलेज एंड केगन पॉल*

वेबर, एम, (1948). *द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म* (ट्रांसलेटेड बाय टॉलकॅट पार्सन्स विद ए फार्वर्ड बाय आर. एच. टॉनि), लंदन : एलेन एंड अनविन

बोटोमोर, टी.बी., (1975). मार्क्सिस्ट सोशियॉलॉजी. लंदन : मैकमिलन

बोटोमोर, टी.बी. व अन्य (सम्पादित) (1983). *ए डिक्शनरी ऑफ मासिस्ट थॉट*, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस

मार्क्स, के. और फ्रेडरिक एंजेल्स, (2002). *द कम्नयूनिस्ट मैनिफैस्टो.* हरमोंइस स्लोर्ट : पैगुइन

अरोन, आर, (1967). *मेन करेंट्स इन सोशियोलोजिकल थॉट,* लंदन : फेइनफील्ड एंड निकलसन

कोहन, जे क्रेग, (2007). *क्लासिकल सोशियोलोजिकल थ्योरी द्वितीय* संस्करण ब्लैकवैल

जौन्स आर. ए (1968). *एमिल दर्खाइम : एन इंट्रोक्शन टू फोर मेजर वर्क्स,* लंदन : सेज

जयापालन एन. *सोशियोलोजिकल थ्योसिस,* नई दिल्ली : ऐटलांटिक पब्लिशर

(ब) हिन्दी में उपलब्ध कुछ पुस्तकें

सिंह आर. जी. समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएं. मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमीः भोपाल श्रीवास्तव, सुरेन्द्र कुमार, समाजविज्ञान के मूल विचारक. उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ

श्रीवास्तव, सुरेन्द्र कुमार, *समाज के मूल विचारक.* उत्तरप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमीः लखनऊ, क्रमांकः 541

यशपाल, (1983). *मार्क्सवाद.* लोकभारती प्रकाशनः इलाहाबाद

दर्खाइम, एमिल, (1982). *समाजशास्त्री पद्धति के नियम.* (अनुवाद) हरिश्चंद्र उप्रेती. राजस्थान हिंदी ग्रंथ. अकादमीः जयपुर

वर्मा, ओमप्रकाश, 1983–84. दर्खाइम एक अध्ययन. विवेक प्रकाशनः दिल्ली

दर्खाइम, एमिल, (1982). *समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम.* (अनुवादक) हरिश्चन्द्र उप्रेती, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमीः जयपुर क्रमांकः 516

चौहान, ब्रजराज, (1994). *समाज विज्ञान के प्रेरक स्रोतः वेबर, मार्क्स, दुकहैम.* ए.सी. ब्रदर्सः उदयपुर

बोटोमोर, टी.बी., (1975). *मार्क्सवादी समाजशास्त्र.* (अनुवादकः सदाशिव द्विवेदी) मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेडः नई दिल्ली

मिश्र, शिव कुमार, (1973). *मार्क्सवादी साहित्य चिंतनः इतिहास तथा सिद्धान्त.* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमीः भोपाल

शर्मा, रामविलास, (1986). *मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज.* लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

शर्मा, रामविलास, (1986). *मार्क्स और पिछड़े हुए समाज.* राजकमल प्रकाशनः नई दिल्ली

सांकृत्यायन, राहुल, (1954). *कार्ल मार्क्स.* किताब महलः इलाहाबाद

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

IGNOU SOCIAL MEDIA

QR Code -website ignou.ac.in

QR Code -e Content-App

QR Code - IGNOU-Facebook (@OfficialPageIGNOU)

QR Code Twitter Handel (OfficialIGNOU)

INSTAGRAM (Official Page IGNOU)

QR Code -e Gyankosh-site

QR Code generated for quick access by Students

IGNOU website

eGyankosh

e-Content APP

Facebook (@offical Page IGNOU)

Twitter (@ Offical IGNOU)

Instagram (official page ignou)

Like us, follow-us on the University Facebook Page, Twitter Handle and Instagram

To get regular updates on Placement Drives, Admissions, Examinations etc.

MPDD/IGNOU/P.O.27K/September, 2020

ISBN: 978-93-89969-87-0